हिन्दी-राष्ट्र

या

सूबा हिन्दुस्तान

लेखक

श्रीयुत धीरेन्द्र वर्म्मा, एम. ए.

अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, विश्वविद्यालय प्रयाग
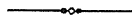
प्रकाशक

लीडर प्रेस, प्रयाग

मूल्य १)

प्रथम संस्करण १००० प्रति सन् १९३८ ई०

मुद्रक और प्रकाशक—पं० कृष्णाराम मेहता, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

वक्तव्य

इस पुस्तक का लिखना मैंने १९२२ में प्रारम्भ किया था और इसके प्रथम चार अध्याय उन्हीं दिनों जबलपुर की "श्री शारदा" में निकले थे। इन अध्यायों को दुहराकर तथा एक नया पांचवां अन्तिम अध्याय बढ़ा कर इस छोटी सी पुस्तक को हिन्दी-भाषा-भाषियों के संमुख विचारार्थ रख रहा हूं। "हिन्दी राष्ट्र" की इस मेरी कल्पना के संबंध में इस समय मतभेद हो सकता है किन्तु मेरे यह विचार बहुत वर्षों के अनुभव, मनन तथा अध्ययन के फल स्वरूप हैं, अतः मेरा दृढ़ विश्वास है कि इन्हें अपनाये बिना हिन्दी-भाषा-भाषियों का कल्याण संभव नहीं है। मुझे अत्यन्त हर्ष होगा यदि यह पुस्तक हिन्दी-भाषा-भाषी नेतागण, विद्वद्वर्ग, तथा संपादकमंडल का ध्यान इस अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर आकर्षित कर सके।

इन निबंधों को पुस्तकाकार प्रकाशित करने का निश्चय गतवर्ष उस समय किया गया था जब भारत के कुछ प्रान्तों की सीमाओं के निर्धारण की चर्चा बहुत जोरों से उठी हुई थीं। किन्तु कुछ अनिवार्य कारणों से पुस्तक के प्रकाशन में बहुत विलम्ब हो गया। मैं अनुभव करता हूँ कि देश की वर्तमान परिस्थिति इस विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के लिये बहुत उपयुक्त नहीं है। परन्तु इस स्थायी समस्या पर हम हिन्दी-भाषा-भाषियों को आगे-

पीछे विचार करना ही पड़ेगा अतः पुस्तक का प्रकाशन स्थगित कर देना मैंने उचित नहीं समझा ।

हिन्दी-भाषा-भाषियों की सभ्यता के इतिहास के संबंध में भी मेरे कुछ विचार हैं जिन्हें, यदि अवकाश मिला तो, कभी भविष्य में देशवासियों के संमुख रक्खूंगा ।

प्रयाग,

२० अगस्त, १९३०

धीरेन्द्र वर्म्मा

समर्पित

पूज्य पिताजी की सेवा में

सादर

विषय-सूची

पृष्ठ

हमारा हिन्दुस्तान

सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्ताँ हमारा
हम बुलबुलें हैं उसकी, वो गुलसिताँ[१] हमारा।
गुरबत[२] में हों अगर हम, रहता है दिल वतन में
समझो हमें वहीं ही, दिल हो जहाँ हमारा।
परबत वो सब से ऊँचा, हमसाया-आसमाँ-का[३]
वो सन्तरी हमारा, वो पासबाँ[४] हमारा।
गोदी में खेलती हैं जिसके हज़ारों नदियाँ
गुल्शन है जिनके दम से रश्के-जिनाँ[५] हमारा।
ऐ आबरोदे गंगा,[६] वो दिन है याद तुझ को
उतरा तेरे किनारे जब कारवाँ[७] हमारा।
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा।
यूनानो, मिस्रो, रोमाँ सब मिट गये जहाँ से
अब तक मगर है बाक़ी नामोनिशाँ हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं मिटाये
सदियों रहा है दुश्मन दौरे-ज़माँ[८] हमारा।
'इक़बाल' कोई महरम[९] अपना नहीं जहाँ में
मालूम क्या किसी को दर्दे-निहाँ[१०] हमारा॥

---

१ बाग़। २ परदेस, यात्रा। ३ गगन-चुम्बी; आकाश के निकट। ४ चौकीदार। ५ स्वर्ग को लज्जित करने वाला देश। ६ गंगा नदी का जल। ७ क़ाफ़िला। ८ काल-चक्र। ९ सुहृद मित्र। १० गुप्त-पीड़ा।
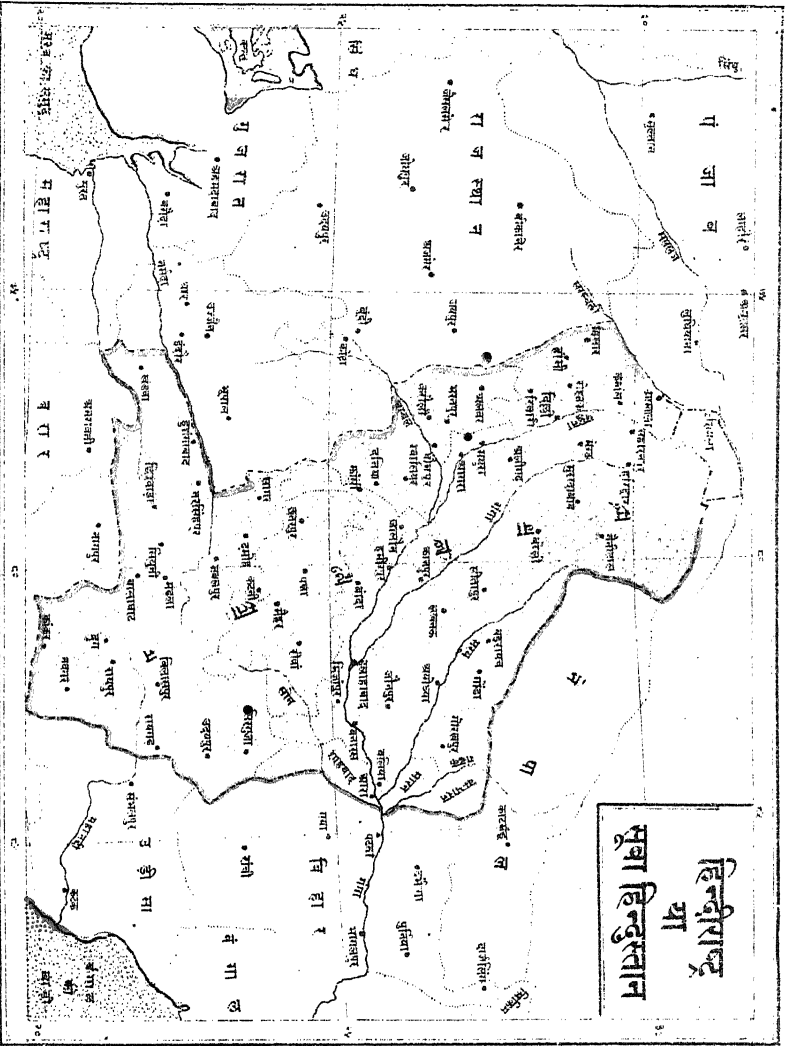
हिन्दी राष्ट्र

या

सूबा हिन्दुस्तान

१. राष्ट्र के लक्षण

राष्ट्र शब्द की परिभाषा

आजकल राष्ट्र (Nation) शब्द का प्रयोग बहुत होता है किन्तु इसका ठीक अर्थ क्या है इस पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। राजनीति-शास्त्र के पण्डितों के मत में 'राष्ट्र उस जन-समुदाय का नाम है जिसमें लोगों की स्वाभाविक समानताओं के बन्धन ऐसे दृढ़ और सच्चे हों कि वे एकत्र रहने से सुखी व अलग अलग हो जाने से असन्तुष्ट रहें, और ऐसी समानताओं के बन्धनों से असम्बद्ध अन्य लोगों की पराधीनता को सहन न कर सकें।' देश (country), राज्य (state), वर्ग (race) तथा धर्म (religion) से राष्ट्र भिन्न है, यद्यपि ये सब राष्ट्र के आवश्यक अङ्ग अवश्य हैं। मनुष्य-समाज के संगठन में परिवार और ग्राम तथा

पुर के बाद राष्ट्र का स्थान है। राष्ट्र के बाद राष्ट्र-संघ और सम्पूर्ण मनुष्य-समाज की कल्पना होती है। इन स्वाभाविक समानताओं के बन्धन निम्नलिखित हो सकते हैं :—

(१) देश-सम्बन्धी एकता (२) हानि लाभ की एकता (३) राज्य की एकता (४) भाषा की एकता (५) धर्म्म की एकता (६) वर्ग की एकता और (७) इस एकता का अभिमान जो ऐतिहासिक पूर्वजों के गौरव व अन्य ऐसे ही कारणों से उत्पन्न होता है।

पहला लक्षण : देश सम्बन्धी एकता

सब से प्रथम स्थान देश-सम्बन्धी एकता का है। एक राष्ट्र कहलाने वाले जन-समुदाय का संसार में कोई देश या भूमि-भाग अवश्य होना चाहिए। देश राष्ट्र-रूपी व्यक्ति का शरीर है जिसके बिना राष्ट्र की कल्पना करना ही दुस्तर है। संसार के इतिहास में यहूदियों के समान बहुत से ऐसे अभागे समुदायों का वर्णन मिलता है जो अपने देश के छिन जाने से बिना घर के आदमी की तरह संसार में मारे मारे फिरते हैं। इनका बल दिन-दिन क्षीण होता जाता है और यदि ये किसी नये देश को अपना घर नहीं बना लेते हैं तो इनके समूल नष्ट होने में अधिक दिन नहीं लगते। एक राष्ट्र के व्यक्ति यदि थोड़े दिनों के लिये दूसरे देश में चले जावें तो इससे कोई हानि नहीं होती। परिवार में भी तो अतिथि आया जाया करते हैं। भारत में शासन के लिये कुछ समय को आने से अँग्रेज़ों की राष्ट्रीयता पर कोई विशेष प्रभाव

नहीं पड़ता। दूसरे देश में सदा के लिये बस जाने से धीरे धीरे राष्ट्रीयता में परिवर्तन हो जाता है। विवाहिता कन्या अपने पति के घर की बातें सीख लेती है और फिर उसी को वह अपना घर मानने लगती है। अमेरिका के संयुक्त-राज्य में बसा हुआ अँग्रेज़ अपने को अमेरिकन समझता है, अँग्रेज़ नहीं।

इस देश-सम्बन्धी एकता में प्राकृतिक अवस्था से बहुत सहायता मिलती है। इसका प्रभाव भी लोगों के आचार-विचार पर बहुत पड़ता है। पहाड़, मैदान, जंगल, रेगिस्तान तथा सर्द और गर्म देशों के रहने वाले अपनी-अपनी विशेष आवश्यकताओं के कारण एक दूसरे से भिन्न होते हैं। राष्ट्र के लोगों का विकास तथा बल देश में आने-जाने की सुविधाओं पर भी बहुत कुछ अवलम्बित रहता है। यदि आने-जाने की सुविधा अधिक है तो लोगों का ऐक्य सुदृढ़ होगा। जितने भूमि-भाग में लोग आसानी से मिल-जुल सकेंगे उतना ही देश स्वाभाविक रीति से एक राष्ट्र हो सकेगा। इसी कारण से पहाड़ी प्रदेश में राष्ट्र छोटे होते हैं और मैदानों में बड़े होते हैं। प्राचीन काल में, जब आने-जाने की सुविधाएँ कम थीं, राष्ट्र छोटे छोटे होते थे। आजकल वे बड़े होते हैं। किन्तु राष्ट्रीयता के लिये देश की प्राकृतिक विभिन्नता प्रत्येक अवस्था में बाधक नहीं होती है। एक राष्ट्र में मैदान व पहाड़, जंगल व रेगिस्तान, सर्द व गर्म सब प्रकार के भूमि-भाग थोड़े।बहुत हो सकते हैं, यद्यपि किसी एक की प्रधानता साधारणतया अवश्य होनी चाहिये।

दूसरा लक्षण : हानि-लाभ की एकता

राष्ट्र का दूसरा तथा प्रधान लक्षण जन-समुदाय के हानि-लाभ का एक होना है। एकता के अन्य बन्धनों के होते हुए भी अर्थ-सम्बन्धी बन्धन मुख्य है। संसार के इतिहास में यद्यपि धर्म का प्रभाव सर्व प्रधान दिखलाई पड़ता है, किन्तु अर्थ के आगे वह भी गौण हो जाता है। अर्थ के बन्धन में बँधे हुये भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य जैसे गुरु-जन भी अधर्म करने को उद्यत हो गये थे। अर्थ-सम्बन्धी एकता होने से राष्ट्र में धन के बढ़ जाने से उसका प्रभाव सम्पूर्ण जन-समुदाय पर पड़ता है तथा घट जाने से राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति उसका अनुभव करता है। भारतवर्ष का विशाल राज्य मिल जाने से इंगलैंड के संपूर्ण जन-समुदाय की आर्थिक अवस्था सुधर गई; किन्तु फ्रांस पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि वह भिन्न राष्ट्र है। पिछले महायुद्ध में हार जाने से जर्मनी को जुर्माने का रुपया देना पड़ रहा है; उसको प्रत्येक जर्मन अनुभव करता है। इस जुर्माने में जो अंश फ्रांस को मिलता है उसका उपयोग फ्रांस के राष्ट्रीय कार्यों में किया जा रहा है जिससे प्रत्येक फ्रांसीसी को लाभ पहुँचता है। इस आर्थिक हानि-लाभ के भिन्न होने के कारण फ्रांस तथा जर्मन राष्ट्र बिलकुल भिन्न हैं। इतिहास के पढ़ने वाले जानते ही हैं कि इंगलैंड और फ्रांस की पुश्तैनी दुश्मनी में आर्थिक विभिन्नता एक मुख्य कारण है।

राष्ट्र के हानि-लाभ का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर बराबर नहीं पड़ता है। यह व्यक्ति की विशेष परिस्थिति के ऊपर निर्भर होता

है। परिवार में एक व्यक्ति कमा कर लाता है तथा दूसरे लोग उसका उपयोग करते हैं। बच्चे व बुड्ढे बिना कुछ सहायता दिये ही व्यय करते हैं, लेकिन इस कारण उनसे कोई द्वेष नहीं करता। सम्पूर्ण परिवार के लिये अन्त में जो बात लाभकर होती है उसी पर सब लोगों का ध्यान रहता है। ठीक यही अवस्था राष्ट्र की भी है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी शक्ति के अनुसार राष्ट्र के कार्य में सहायता देता है, और उस व्यक्ति की साधारण आवश्यकताओं को पूर्ण करने का भार राष्ट्र पर रहता है। राष्ट्र में भी कुछ लोग पूंजी के समान होते हैं और कुछ को पेन्शन देनी होती है। हानि-लाभ की विभिन्नता का यह तात्पर्य नहीं है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से लड़ता रहे। प्रत्येक परिवार का आय-व्यय अलग होता है किन्तु इस कारण से परिवारों में आपस में झगड़ा रहे यह आवश्यक नहीं है। हाँ, यदि एक परिवार के लोग किसी दूसरे परिवार के धन की ओर कुदृष्टि से देखेंगे तो झगड़ा होना स्वाभाविक है।

तीसरा लक्षण : राज्य की एकता

जैसे देश राष्ट्र का शरीर है वैसे ही राज्य-शक्ति राष्ट्र का शारीरिक बल है। राष्ट्र के प्रत्येक अंग को नियमित रूप से चलाने और सुरक्षित रखने के लिये राज्य-शक्ति नितान्त आवश्यक है। यदि राष्ट्र का अपना दृढ़ राज्य नहीं है तो राष्ट्र का प्रत्येक अंग निर्जीव हो जायगा, देश के टुकड़े टुकड़े हो जायेंगे और सम्पत्ति अन्य राष्ट्र छीन लेंगे। राष्ट्र-भाषा मरने लगेगी; धर्म का नाश होने लगेगा तथा सामाजिक सङ्गठन जड़ से हिल जायगा। जिस राष्ट्र

में स्वराज्य है वहां के व्यक्ति को कौन आँख उठा कर देख सकता है? संपूर्ण राष्ट्र की शक्ति अदृष्ट रूप से उसकी रक्षा करती है। यही कारण है कि संसार के इतिहास में अगणित जन-समुदाय स्वराज्य के लिये अपने को न्यौछावर करते आये हैं। दूसरे के घर का न्याय-पूर्वक प्रबन्ध करना आजकल तो संभव नहीं है। कदाचित कभी भी संभव नहीं हो सकता।

चौथा लक्षण : भाषा की एकता

चौथा स्थान भाषा की एकता का है। भाषा की एकता राष्ट्र के व्यक्तित्व का सब से बड़ा चिन्ह है। राष्ट्र का प्रत्येक कार्य भाषा के द्वारा चलता है। साहित्य, विज्ञान, धर्म और राजनीति इन सब की शिक्षा भाषा के द्वारा ही होती है; अतः एक भाषा-भाषी लोगों में एक से विचारों का फैलना स्वाभाविक है। राष्ट्र की भाषा वही है जिसे अमीर-ग़रीब, स्त्री-पुरुष, पढ़े-बेपढ़े, शहर वाले व गाँव वाले सब समझते हों। राष्ट्र के लाभ के लिये या विद्या-प्रेम के कारण थोड़े व्यक्ति विदेशी भाषाओं को सीख सकते हैं, किन्तु राष्ट्र की भाषा वही रहेगी जिसमें गाकर कवि गण राष्ट्र के गाँव-गाँव में अपनी वाणी पहुँचाते हैं, धर्माचार्य घर-घर उपदेश देकर लोगों को धर्म पथ पर आरूढ़ करते हैं, जिसके द्वारा सुधारक आन्दोलन-कारी विचारों को फैलाते फिरते हैं, इतिहासज्ञ पुराना गौरव बता कर राष्ट्र को उत्साहित करते हैं और राजनीतिज्ञ राष्ट्र के हानि-लाभ को राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के सामने रखने में समर्थ होते हैं।

अन्य अङ्गों में समानता न होने से एक भाषा बोलने वाले

लोग कई राष्ट्रों में विभक्त हो सकते हैं ; किन्तु भिन्न भिन्न भाषायें बोलने वाले समुदायों का एक राष्ट्र के रूप में सङ्गठित होना असाधारण तथा अस्वाभाविक है ।

पांचवां लक्षण : धर्म्म की एकता

इन चार मुख्य बन्धनों के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसे बन्धन हैं जिनके होने से राष्ट्र सुदृढ़ हो जाता है तथा व्यक्तिगत जीवन शान्ति, प्रेम और सुख से कटता है । इन में प्रथम स्थान धर्म की समानता का है । व्यक्ति की तरह राष्ट्र की आत्मा के लिये भी धर्म की आवश्यकता होती है । राष्ट्र में जितने ही अधिक व्यक्ति एक से धार्मिक विचार रखने वाले होंगे उतनी ही अधिक सुविधा से वे एक साथ रह सकेंगे । धर्म के साथ आचार-विचार, सामाजिक संगठन तथा साहित्य आदि का विशेष सम्बन्ध होता है । यही कारण है कि धर्म के एक होने से राष्ट्र की नीव अधिक सुदृढ़ हो जाती है । कई धर्म होने पर भी एक राष्ट्र हो सकता है, किन्तु यदि एक-धर्मावलम्बी प्रधान रूप से होंगे तो आपस में मेल की संभावना और भी अधिक होगी ।

छटा लक्षण : वर्ग की एकता

इन गौण बातों में दूसरा स्थान वर्ग की एकता का है । व्यक्ति या परिवार जिस प्रकार अपने शुद्ध रक्त का गौरव करता है वैसे ही राष्ट्र भी कर सकता है । लोगों के एक ही नसल के होने से राष्ट्र की एकता और भी अधिक दृढ़ हो जाती है ; किन्तु राष्ट्रीयता के लिये वर्ग की एकता अपरिहार्य नहीं है ।

अन्तिम लक्षण : राष्ट्रीयता का भाव

इन सब अंगों के होते हुए भी एक बात ऐसी है जिसके अभाव से राष्ट्र-रूपी शरीर बिना आत्मा का कहना चाहिए। यह बात जन-समुदाय में इस विचार का होना है कि "हम एक हैं"। इसे राष्ट्रीयता का भाव कह सकते हैं। जन-समुदाय में इस भाव का जाग्रत रूप में होना एक-साथ सुख-दुःख उठाने से उत्पन्न होता है। जहाँ श्रीमान् से लेकर कङ्गाल तक का रक्त एक में मिल कर बहता है, जहाँ अवसर पड़ने पर एक ही रूखी रोटी का टुकड़ा अमीर और ग़रीब दोनों बाँट कर खाते हैं, जहाँ किसी एक ही पूर्वज का नाम लेने से विद्वान् और अपढ़ दोनों के हृदय वेग से धड़कने लगते हैं वहाँ समझना चाहिये कि राष्ट्रीयता का भाव जीवित अवस्था में वर्तमान है।

राष्ट्रीयता का यह भाव चिरकाल तक तभी स्थायी रह सकता है जब प्रत्येक व्यक्ति को, उसकी योग्यता के अनुसार, राष्ट्रीय कार्यों के सम्पादन का समान रीति से अवसर मिलता रहे। आर्थिक स्थिति, विशेष धर्म का अवलम्बन तथा किसी विशेष जाति अथवा कुल में उत्पत्ति इस समानता में बाधक नहीं होनी चाहिये। यदि सेनापति अथवा मंत्री की योग्यता रखने वाला व्यक्ति इस कारण से इन स्थानों के लिये नहीं चुना जा सकता कि वह ज़मींदार या कुलीन नहीं है तो ऐसा राष्ट्र बहुत दिन नहीं ठहर सकता। राष्ट्र के परिपक्व हो जाने पर राष्ट्रीयता का रूप छोटी छोटी बातों में भी प्रकट होने लगता है। सब लोगों का खान-पान, रहन-सहन, कपड़े

लत्ते आदि एक ही साँचे में ढलने लगते हैं। इन बातों की समानता राष्ट्रीयता के भाव को उत्तेजित करने तथा उसे प्रत्यक्ष रूप देने में सहायक होती है।

विद्वानों का मत है कि देश, अर्थ, राज्य, भाषा, धर्म, वर्ग तथा ऐतिहासिक गौरव की समानताओं से बँधे हुए प्रत्येक जन-समुदाय को स्वतंत्र और पृथक् रहने का जन्म-सिद्ध अधिकार है।

---

२. क्या भारत एक राष्ट्र है ?

पूर्वपक्ष

अब हमें ध्यान पूर्वक यह देखना है कि क्या भारतवर्ष पर राष्ट्र के उपर्युक्त लक्षण घटित होते हैं ? साधारणतया भारत एक राष्ट्र माना जाता है और राष्ट्रीयता के प्रायः समस्त चिन्ह भी भारतवर्ष में दिखाई पड़ते हैं। भारतवर्ष के उत्तर में पर्वतराज हिमालय है जिसके कारण यूरेशिया महाद्वीप के अन्य देशों से भारत बिलकुल पृथक हो जाता है। शेष तीन ओर महासागर भारत की रक्षा करता है। कुमारी अन्तरीप से काश्मीर तक तथा कराँची से आसाम तक भारत का विस्तार है। आर्थिक हानि-लाभ पर दृष्टि डालने से भी भारत एक मालूम होता है। पिछले महायुद्ध में सम्पूर्ण भारत को ऋण देना पड़ा था। आने जाने वाले माल पर जो कर बिठलाया जाता है उसका सारे भारत पर समान प्रभाव पड़ता है। राज्य के सम्बन्ध में तो एकता स्पष्ट ही है। आजकल सम्पूर्ण भारत पर अँग्रेजी शासन है। इसके पूर्व मुसलमानों का राज्य प्रायः सम्पूर्ण भारत पर था। गुप्त, मौर्य्य तथा उससे भी पूर्व भारत में बड़े बड़े साम्राज्य स्थापित हुए थे। भाषा की एकता के सम्बन्ध में भी अधिक कठिनाई नहीं मालूम पड़ती। आजकल राज-भाषा अँग्रेजी तो एक है ही। प्राचीन समय में संस्कृत का

प्रचार प्रायः सम्पूर्ण भारत में था। निकट भविष्य में यह स्थान हिन्दुस्तानी भाषा को मिलेगा, यह निश्चित-सा है। भारत में हिन्दू धर्मावलम्बी विशेष रूप से रहते हैं, यद्यपि छः करोड़ मुसलमान धर्म्म के मानने वाले भी हैं। इस समस्या को सुलझाने का बराबर प्रयत्न हो रहा है। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के सम्बन्ध में अविरत परिश्रम किया जा रहा है। वर्ग के सम्बन्ध में भारतीय आर्य्य सन्तान होने का गौरव करते हैं। दक्षिण के कुछ भाग में द्राविड़ वर्ग के लोगों का प्राधान्य अवश्य है, किन्तु वहां भी आर्य्य-सभ्यता की छाप गहरी है। इन सबके अतिरिक्त राष्ट्रीयता की लहर भी एक स्थान से उठकर भारत के कोने कोने में पहुँच जाती है। तब फिर भारत के एक राष्ट्र होने में क्या सन्देह हो सकता है?

भारतवर्ष में भाषा की एकता नहीं है

ऊपरी दृष्टि से देखने से भारत एक राष्ट्र अवश्य मालूम पड़ता है परन्तु हमें तो यहाँ राष्ट्र की परिभाषा के आधार पर इस विषय पर सूक्ष्म रीति से विचार करना है। भाषा का राष्ट्र से बहुत निकट का सम्बन्ध है अतः सबसे प्रथम भाषा के प्रश्न पर विचार करना अनुचित न होगा। अँग्रेज़ी भारत के लोगों की अपनी भाषा नहीं कही जा सकती। १९२१ की जन-संख्या के अनुसार बत्तीस करोड़ भारतवासियों में केवल पच्चीस लाख अँग्रेज़ी लिख-पढ़ सकते थे। इसमें सन्देह नहीं कि भारत के भिन्न भिन्न भागों के अँग्रेज़ी पढ़े-लिखों को एक साथ विचार करने

में अँग्रेज़ो से अवश्य सहायता मिली है, किन्तु यह ऐक्य कृत्रिम और अस्थायी है। महासभा की कार्य्यवाही में अँग्रेज़ी का स्थान हिन्दुस्तानी ले रही है। अँग्रेज़ी राज्य के उठ जाने पर अँग्रेज़ी का भारत में वही स्थान रह जायगा जो आज फ़ारसी का है।

१९२१ की जन-संख्या के अनुसार बत्तीस करोड़ भारतवासियों में ३५६ की मातृ-भाषा संस्कृत थी। निस्सन्देह इससे कहीं अधिक संख्या संस्कृत समझने वालों की होगी किन्तु तो भी संस्कृत के राष्ट्र-भाषा होने के सम्बन्ध में कुछ भी कहना व्यर्थ है। प्राचीन काल में भी सम्पूर्ण भारत की भाषा संस्कृत कभी नहीं रही है। गङ्गा की घाटी में एक समय संस्कृत कदाचित मातृभाषा थी, किन्तु यह स्वप्न की सी बात है। हिन्दुओं का प्राचीन धार्मिक साहित्य संस्कृत में है इस कारण इसका पठन-पाठन अवश्य अधिक होता रहेगा। भारतवर्ष के हिन्दुओं के लिए संस्कृत का वही स्थान है जो पारसियों के लिये जेंद, यहूदियों के लिये हेब्रू, बौद्धों के लिये पाली, ईसाइयों के लिये लैटिन तथा मुसलमानों के लिये अरबी का है। संस्कृत भारत के जन-समुदाय की भाषा नहीं है।

हिन्दुस्तानी का प्रचार धीरे धीरे बढ़ता जा रहा है। महासभा की कार्य्यवाही बहुत कुछ हिन्दुस्तानी में होने लगी है। सम्भव है भविष्य की भारत सरकार की राजभाषा हिन्दुस्तानी हो जावे किन्तु तो भी यह सम्पूर्ण भारत के लोगों की मातृभाषा के समान नहीं हो सकती। हिन्दुस्तानी का भारत में अधिक से अधिक वैसा ही स्थान हो सकेगा जैसा कि आज कल अंग्रेज़ी

शासन में अंग्रेज़ी का है, मुसलमान काल में फ़ारसी का था, गुप्त साम्राज्य में संस्कृत, तथा मौर्य्य साम्राज्य में पाली का था। घोषणा-पत्र हिन्दुस्तानी में निकल सकते हैं और सम्भव है उन्हें सम्पूर्ण भारत में थोड़ा-बहुत समझ भी लिया जाय—यद्यपि सन्देह इसमें भी है क्योंकि अँग्रेज़ी घोषणाओं को समझने के लिये आजकल भी प्रान्तिक भाषाओं में अनुवाद करना पड़ता है और अशोक के आदेशों में भी प्रान्तिक प्राकृतों का प्रभाव पाया जाता है—किन्तु सम्पूर्ण भारत के लोगों के हृदयों तक तो हिन्दुस्तानी की पहुँच कभी नहीं हो सकती। चण्डीदास, तुकाराम, नरसी मेहता तथा बाबा नानक की सुधा-सूक्तियों के लिये तृषित आत्माओं की तृप्ति क्या राम-चरित-मानस अथवा सूरसागर कर सकेगा? ऐसी आशा करना अस्वाभाविक है। हिन्दुस्तानी भारत की 'राजभाषा' भले ही हो जाय, किन्तु 'राष्ट्रभाषा' नहीं हो सकती।

हिन्दुस्तानी, संस्कृत, अथवा अंग्रेज़ी जैसी कृत्रिम भाषाओं से काम नहीं चलेगा। इस के लिये हमें लोगों की अपनी जीती-जागती भाषाओं की ओर जाना पड़ेगा। भाषा-सर्वे के अनुसार आजकल भी भारत की भाषा एक नहीं है किन्तु यहाँ १८८ पृथक् भाषाएँ बोली जाती हैं। इसमें बोलियाँ सम्मिलित नहीं हैं। बोलियाँ को मिलाने से यह संख्या ५४४ से भी ऊपर पहुंच जाती है। प्राचीन काल में भी भारत के भिन्न भिन्न भागों में पृथक् पृथक् प्राकृतें बोली जाती थीं। यह कहा जा सकता है कि यह भाषा-सर्वे कठिन वैज्ञानिक रीति से की गई है तथा थोड़ी संख्या

में पाये जाने वाले बहुत से बाहर के लोगों की भाषाओं की गिनती भी इसमें कर ली गयी है, किन्तु तो भी कुछ भाषाओं का तो पृथक् अस्तित्व मानना ही पड़ेगा। आसामी, बङ्गाली, उड़िया, हिन्दी, पञ्जाबी, काश्मीरी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, तेलगू, तामिल, कनारी, मलयालम तथा सिंहाली इनके एक दूसरे से पृथक् होने के सम्बन्ध में तो कोई भ्रम ही नहीं हो सकता। ये भाषाएँ एक दूसरे से इतनी भिन्न हैं कि एक का बोलने वाला दूसरे की बोली नहीं समझ सकता। बङ्गाली किसान अपना दुःख-सुख मराठी किसान से नहीं कह सकता। उड़िया गुजराती से बात-चीत नहीं कर सकता। इन भाषाओं का अपना पृथक् पृथक् प्राचीन साहित्य है जिन पर इन भाषा-भाषियों का गौरव करना उचित ही है। ज्ञानेश्वर, रामदास, तुकाराम, तथा तिलक मराठी बोलने वालों के अपने कवि तथा लेखक हैं, जैसे चण्डीदास, काशीराम, भारतचन्द्र राय बङ्गाली बोलने वालों के अपने हैं। आजकल भी इन भाषाओं के पृथक् पृथक् अपने कवि तथा लेखक हैं, अपने समाचारपत्र तथा पत्रिकाएँ हैं, अपने अपने ढंग पर वर्तमान साहित्य बन रहा है। भारत की इन भाषाओं की तुलना योरप की अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, इटालियन, स्पेनिश, पोर्तगीज़ इत्यादि भाषाओं से की जा सकती है, केवल अन्तर इतना ही है कि योरपीय भाषा-भाषियों के स्वतंत्र होने के कारण इनकी भाषाओं का विकास भारतीय भाषाओं की अपेक्षा प्रायः अधिक हो चुका है।

यदि योरोपीय देशों की जनता प्रायः अपने ही देश की भाषा बोलने वाली मानली जाय, जैसा वास्तव में है भी, तो निम्नलिखित तुलनाएँ शिक्षाप्रद होंगी :—

भारतीय भाषाएँ बोलने वालों की संख्या (१६२१ की जन-संख्या के अनुसार)	करोड़	लाख	योरपीय देशों की जन-संख्या (१६२० के बाद)	करोड़	लाख
हिन्दी (बिहार मिलाकर)	६	८०	सोवियट रूस	६	४८
बङ्गाली	४	६२	जर्मनी	६	३२
			अँग्रेज़ी टापू	४	८५
			इटली	४	०
			फ्रान्स	४	०
तेलगू	२	३६	पोलैण्ड	२	६५
पञ्जाबो	२	१८	स्पेन	२	१३
मराठी	१	८७	रूमानिया	१	७४
तामिल	१	८७	बेलजियम	०	७६
राजस्थानी	१	२७	हालैण्ड	०	७५
उड़िया	१	०	ग्रीस	०	६६
कनारी	१	०	आस्ट्रिया	०	६५
गुजराती	०	६५	पुर्तगाल	०	६०
मलयालम	०	७५	स्वेडन	०	६०
सिन्धी	०	३४	स्विटज़लैंण्ड	०	४०
			डेनमार्क	०	३४

भारतीय भाषाएँ बोलने वाले संख्या में कम हैं अब यह नहीं कहा जा सकेगा।

ऊपर के संपूर्ण विवेचन से इतना तो अवश्य ही स्पष्ट हो गया होगा कि भारत के लोगों की भाषा एक नहीं है। राष्ट्र का प्रधान स्वाभाविक लक्षण-भाषा का ऐक्य-भारत में नहीं पाया जाता। धर्म अथवा राज्य के कारण प्रधानता को प्राप्त हुई किसी भाषा की ऊपरी एकता को देखकर लोग प्रायः भूल में पड़ जाते हैं। विद्वानों को इस विषय में सावधानी रखनी चाहिए।

भारतवर्ष और शासन की एकता

भाषा का प्रश्न इतना जटिल नहीं है। अंग्रेज़ी भारत की राष्ट्रीय भाषा है अथवा हो सकती है इस विचार के रखने वाले अब बहुत कम मिलेंगे। किन्तु अन्य बातों में यह कठिनाई अधिक अनुभव होती है। उदाहरण के लिए राज्य का प्रश्न लीजिए। वैसे तो प्रायः सम्पूर्ण भारत अंग्रेज़ों के आधिपत्य में है, किन्तु कुछ भाग पर अंग्रेज़ सीधे शासन करते हैं, शेष पर भारतीय नरेश राज्य करते हैं। इन देशी राज्यों की संख्या ६७५ है, जिनमें कुछ तो इतने बड़े हैं कि इनकी तुलना कम से कम क्षेत्रफल में तो योरप के बहुत से देशों से हो सकती है। इस सम्बन्ध में नीचे लिखी तुलनायें शिक्षाप्रद होंगी :—

भारतीय राज्यों का क्षेत्रफल (सहस्र वर्गमीलों में)		योरपीय देशों का क्षेत्रफल (सहस्र वर्गमीलों में)
काश्मीर	८४	इंग्लैण्ड + आयर्लैण्ड
हैदराबाद	८२	५० + ३३ = ८३

भारतीय राज्यों का क्षेत्रफल (सहस्रवर्ग मीलों में)		योरपीय देशों का क्षेत्रफल (सहस्रवर्ग मीलों में)	
जोधपुर	३५	पुर्तगाल	३५
		आयलैंण्ड	३३
मैसूर	३०	आस्ट्रिया	३२
		स्काटलैण्ड	३०
ग्वालियर	२६	वेलज़ियम + हालैण्ड	
बीकानेर	२३	११ + १३	२४
जैसलमेर	१६	स्विटज़र्लैण्ड	१६
भावलपुर	१५	डेनमार्क	१५
जयपुर	१५		
रीवाँ	१३	हालैण्ड	१३
उदयपुर	१२	वेलज़ियम	११

यदि सम्पूर्ण भारत पर अंग्रेज़ों का शासन होता तो भी इससे कुछ सिद्ध नहीं होता। मुख्य प्रश्न यह है कि क्या भारत का एक छत्राधिपत्य में होना स्वाभाविक है। इंगलैण्ड के बाहु-बल तथा नीति बल के कारण अंग्रेज़ी टापू एक ही शासन में हैं किन्तु इस से यह सिद्ध नहीं होता कि आयलैंण्ड, स्काटलैंड, वेल्स तथा इंगलैंड के पृथक् पृथक् राज्य होना स्वाभाविक तथा हितकर नहीं है। कुछ दिनों पूर्व पोलैण्ड का राष्ट्र तीन विदेशी राष्ट्रों के अधीन था। उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रह

गया था। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि स्वाभाविक रीति से पोलैण्ड तीन राज्यों में विभक्त होना चाहिए था। स्वाभाविक और अस्वाभाविक राज्यों में क्या भेद है यह हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। प्राचीन समय में भी बड़े बड़े साम्राज्य बने हैं जिन्होंने अपनी शक्ति के द्वारा भिन्न भिन्न राष्ट्रों को मिला कर कम से कम कुछ काल तक तो एक केन्द्र से शासन किया है, किन्तु इससे उन साम्राज्यों में सम्मिलित राष्ट्रों के अस्तित्व तथा उनके पृथक् राज्य होने के स्वत्व के विरुद्ध कुछ भी सिद्ध नहीं होता। यदि जापान योरप पर अधिकार कर ले और अपने योरपीय साम्राज्य की राजधानी पेरिस को बनाकर सम्पूर्ण योरप पर सुव्यवस्थित शासन करने लगे, तो इससे यह सिद्ध नहीं होगा कि इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी तथा इटली इत्यादि देशों के, जो जापानी शासन में कदाचित् प्रान्त कहलायँगे, पृथक् राज्य होना स्वाभाविक नहीं है। योरप पर एक केन्द्र से शासन होना अस्वाभाविक होगा।

यह बात भारत के सम्बन्ध में भी हो सकती है। यह विचार इससे और भी दृढ़ होता है कि प्रायः भारत के बराबर ही क्षेत्रफल के योरप-उपद्वीप में, जहाँ साधारण तथा स्वाभाविक रीति से राष्ट्र विभाजित हैं, २२ पृथक् पृथक् राज्यशक्ति रखने वाले राष्ट्र हैं। जन संख्या तथा क्षेत्रफल में बृटिश भारत के प्रान्त योरप के इन स्वतंत्र राष्ट्रों से टक्कर लेते हैं। नीचे दी हुई तुलनायें पाठकों को अवश्य रोचक मालूम होंगी:—

भारत के अँग्रेज़ी प्रान्तों की जन-संख्या (१९२१ की जन-संख्या के आधार पर)	करोड़	लाख	योरपीय देशों की जन-संख्या (१९२० के बाद की जन-संख्या के आधार पर)	करोड़	लाख
संयुक्त-प्रान्त ४–५३ } मध्य-प्रान्त १–४० }	५	९३	जर्मनी	५	९६
बङ्गाल	४	६६	इंगलैण्ड + स्कॉटलैंड-+वेल्स	४	४२
मद्रास	४	२३			
बिहार और उड़ीसा	३	४०	फ्रान्स	४	०
बिहार	२	३४	इटली	४	०
पंजाब	२	०	इंगलैण्ड	३	६३
बम्बई	१	९३	पोलैण्ड	२	९६
आसाम	०	७६	स्पेन	२	१३
गोरखपुर कमिश्नरी	०	६७	रूमानिया	१	७४
फैज़ाबाद ,,	०	६६	बेलज़ियम	०	७९
लखनऊ ,,	०	५६	हालैण्ड	०	७[illegible]
रोहिलखण्ड ,,	०	५२	ग्रीस	०	६६
उड़ीसा	०	५०	आस्ट्रिया	०	६५
इलाहाबाद कमिश्नरी	०	४८	पुर्तगाल	०	६०
मेरठ ,,	०	४५	स्वीडन	०	६०
बनारस ,,	०	४४	बलगेरिया	०	५५

भारत के अँग्रेज़ी प्रान्तों की जन-संख्या (१९२१ की जन-संख्या के आधार पर)	करोड़	लाख	योरपीय देशों की जन-संख्या (१९२० के बाद की जन-संख्या के आधार पर)	करोड़	लाख
आगरा कमिश्नरी	०	४२	आयर्लैण्ड	०	४२
सिन्ध	०	३३	नार्वे	०	२८
गोरखपुर ज़िला	०	३३	लक्ज़ेम्बर्ग	०	२॥
रामपुर राज्य	०	४			
गढ़वाल राज्य	०	३			
बनारस राज्य	०	३॥			
लखनऊ नगर	०	२॥			

नोट :—१. योरप के देशों से तुलना सुविधा के कारण की गई है। इससे यह न समझना चाहिए कि योरप के इन विभागों से प्रभावित होकर लेखक भारत में भी इस तरह के घेरे बनाने के पक्ष में है। अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों से तुलना और भी शिक्षाप्रद होगी। २. यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि योरप के छोटे राष्ट्रों की तुलना भारत के प्रान्तों से नहीं की जा सकती, किन्तु प्रान्तों की कमिश्नरियों, ज़िलों तथा नगरों से करनी पड़ी है।

भारत के प्रान्तीय विभागों के सम्बन्ध में एक अन्य बात भी ध्यान देने योग्य है। कहा जाता है कि ये विभाग केवल शासन

की सुविधा के लिए हैं। यदि यह बात ठीक है तो शासन की सुविधा के अनुसार भारत के किसी प्रकार से भी प्रान्तिक विभाग करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। परन्तु यह सिद्धान्त कार्य्य में परिणत करने में बड़ी कठिनाई पड़ी थी। सन् १९०४ में बङ्गाल प्रान्त को शासन की सुविधा के लिए दो प्रान्तों में विभक्त करने पर बड़ा भारी आन्दोलन हुआ था। बङ्गाल के वे दोनों भाग अंग्रेज़ी शासन में ही थे; यह नहीं था कि अंग्रेज़ी सरकार ने पूर्वी बङ्गाल को चीन सरकार को दे दिया हो। यदि ऐसा किया जाता तो भारत को एक राष्ट्र मानने वाले लोगों का आन्दोलन करना उचित होता। वे कह सकते थे कि भारत का प्रत्येक भाग अंग्रेज़ी शासन में रहना चाहिए; उसका किसी दूसरी सरकार को दे देना भारत की राष्ट्रीयता का अपमान करना है। किन्तु भारत में बङ्गाल का पृथक् प्रान्तिक शासन होने का क्या तात्पर्य्य है? क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि राज्य अथवा शासन की दृष्टि से भी भारत में कुछ स्वाभाविक विभाग हैं? ये विभाग केवल भौगोलिक स्थिति अथवा विदेशियों की शासन-सुविधा पर अवलम्बित नहीं हैं, किन्तु इन भागों की प्रजा की इच्छा तथा उनका सुख इनका सच्चा आधार है।

राज्य शासन की दृष्टि से भारत के अन्दर वास्तव में कुछ स्वाभाविक विभाग हैं जो आजकल सम्पूर्ण भारत पर विदेशी शासन होने के कारण स्पष्ट दिखायी नहीं पड़ते। ब्रिटिश प्रान्तों से इनकी कुछ कुछ तुलना की जा सकती है यद्यपि ये सरकारी

प्रान्त बड़े अस्वाभाविक ढंग से संघटित हैं। महासभा ने इन्हें अधिक स्वाभाविक रीति से बांटने का यत्न किया है। भारत के इन विभागों का आपस में क्या सम्बन्ध रहेगा या रहना चाहिए, यह प्रश्न पृथक् है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि इनको आजकल से तो कहीं अधिक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता देनी होगी। भारत जैसे विशाल द्वीप का एक केन्द्र से उत्तम शासन होना अस्वाभाविक, अहितकर तथा असम्भव है। भारत के ये विभाग योरप के राज्यों के समान पूर्ण रूप से स्वतंत्र रहेंगे, अथवा भविष्य में बनने वाले ब्रिटिश-राष्ट्र-संघ के (British Commonwealth) इंगलैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका तथा न्यूज़ीलैंड आदि विभागों के समान आपस में सम्बद्ध रहेंगे, अथवा अमेरिका के संयुक्त राज्यों की तरह स्वतंत्र भारत में पृथक् रहते हुए भी एक दूसरे से जकड़े रहेंगे, इन प्रश्नों पर हमें इस समय विचार नहीं करना है। यह राजनीतिज्ञों का क्षेत्र है।

प्राचीन भारत की राज्य व्यवस्था

राज्य शासन के सम्बन्ध में भारत की प्राचीन अवस्था पर भी एक दृष्टि डालना उचित होगा। यहाँ शब्दाडम्बरों से हमें बहुत सावधान रहना चाहिए। पूरे पञ्जाब पर भी अधिकार करने में असमर्थ सिकन्दर 'भारत विजयी महाराज सिकन्दर' कहलाते हैं। हमारा काम इन सुन्दर वाक्यों को दुहराने से नहीं चलेगा। मुसलमान-काल में कई बड़े बड़े साम्राज्य भारत में स्थापित हुए थे, किन्तु इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं। मुसल-

मान सम्पूर्ण भारत पर एक केन्द्र से शासन करने में कभी भी सफल नहीं हुए। उनके साम्राज्य में केवल उत्तर भारत आ सका था। दक्षिण तो प्रायः सदा ही स्वतन्त्र रहा। इसके अतिरिक्त राजपूताना तथा मध्य भारत में हिन्दू राजाओं का शासन था यद्यपि ये दिल्ली के सम्राटों के अधीन अवश्य माने जाते थे। 'भारत के मुग़ल साम्राज्य' का अर्थ केवल इतना ही है कि भारत के उत्तरी मैदानों के देशों पर मुग़लों का आधिपत्य था। कुछ पर वे सीधे शासन करते थे और कुछ भागों पर पृथक् पृथक् नरेश राज्य करते थे। नर्मदा के दक्षिण के देशों पर दिल्ली से शासन करना मुसलमान काल में सफल नहीं हो सका।

हिन्दू-काल के वर्धन, गुप्त तथा मौर्य वंश के साम्राज्य भी केवल उत्तर भारत के ही साम्राज्य थे। हर्षवर्धन के साम्राज्य में तो पञ्जाब सिंध, महाराष्ट्र, उड़ीसा तथा पूर्वी बङ्गाल भी सम्मिलित नहीं थे। गुप्त-साम्राज्य में इन देशों में से कुछ ही पर अधिकार था। औरङ्गजेब के समान सम्राट् समुद्र गुप्त भी नर्मदा के दक्षिण में साम्राज्य की स्थायी नींव डालने में सफल नहीं हो सके थे। ऐतिहासिक काल में महाराज अशोक का साम्राज्य सब से बड़ा था, किन्तु उस समय भी दक्षिण भारत उनके साम्राज्य से बाहर था। दक्षिण भारत के उत्तरी भाग पर कदाचित अधूरा ही अधिकार था। उत्तर भारत में भी कितने पृथक् अधीन राज्य थे इनका विवरण नहीं मिलता है। महाराज अशोक के पूर्व इस प्रकार के साम्राज्यों की प्रथा भारत में नहीं थी। प्राचीन भारत के ये साम्राज्य अस्वा-

भाविक तो थे ही, इसके अतिरिक्त दुखदायी भी थे। मगधाधिपति महाराज अशोक को कलिङ्ग देश (उड़ीसा) को अपने साम्राज्य में मिलाने के लिए एक लाख उड़िया लोगों की हत्या करनी पड़ी तथा डेढ़ लाख को क़ैद करना पड़ा था। इन संख्याओं से पता चलता है कि उस समय उड़िया लोग अपनी स्वतंत्रता के लिए कितने विकट रूप से लड़े होंगे। इस प्रकार से भारत के प्रत्येक स्वाभाविक राज्य को नष्ट करके साम्राज्य स्थापित करना क्या सच-मुच बड़े गौरव की बात हो सकती है? क्या संसार के वर्तमान साम्राज्यों की तरह उत्तर भारत के ये प्राचीन साम्राज्य भी दुःख-दायी न होंगे?

मौर्य्य साम्राज्य से पूर्व भारत की अवस्था भिन्न थी। बुद्ध भगवान के समय में केवल उत्तर भारत में ही सोलह स्वतन्त्र बड़े बड़े राज्य थे। महाभारत के समय में भी भारतवर्ष बहुत से स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त था। उस समय चक्रवर्ती राजा होते थे, किन्तु उस चक्रवर्तित्व और हिन्दू मुसलमान तथा वर्तमान काल के साम्राज्यों में बहुत अन्तर है। किसी एक जनपद के राजा के चक्रवर्ती होने का केवल इतना ही तात्पर्य्य था कि अन्य जनपदों के राजा-गण उस राजा को अपने बीच में सबसे अधिक शक्ति-शाली मान लेते थे। जनपदों के स्वतंत्र अस्तित्व रहने में इस चक्रवर्तित्व से कोई कठिनाई नहीं पड़ती थी। कुरु जनपद के महा-राज युधिष्ठिर भारत के चक्रवर्ती राजा थे, इस से यह तात्पर्य कदापि नहीं था कि वे इन्द्रप्रस्थ से बैठ कर मगध, पाण्ड्य, सौराष्ट्र

इत्यादि जनपदों पर शासन करते थे, किन्तु इसका अर्थ केवल इतना ही था कि इन जनपदों के राजाओं ने कुरु जनपद के राजा को अपने से अधिक शक्तिशाली मान लिया था। युधिष्ठिर या दशरथ इसी प्रकार के राजा थे। यदि कोई साधारण राजा चक्रवर्ती राजा के अधिक शक्तिशाली होने में सन्देह करता था तो दोनों के बीच में युद्ध होता था। इस अवस्था में हार जाने पर या तो वह राजा दूसरे का चक्रवर्तित्व स्वीकार कर लेता था या युद्ध में मारे जाने पर उस जनपद का राज-शासन वहाँ के उत्तराधिकारी को दे दिया जाता था। चक्रवर्ती राजा दूसरे जनपदों को अपने राज्य में कभी नहीं मिलाता था। इस बात के सैकड़ों उदाहरण प्राचीन भारत के इतिहास में मिलते हैं। चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य के इस भेद को सदा ध्यान में रखना चाहिए। साम्राज्य का रोग भारत में बौद्ध काल से आरम्भ हुआ। अशोक के साम्राज्य की कुञ्जी धार्मिक दिग्विजय थी, राजनीतिक दिग्विजय नहीं। यह सूक्ष्म भेद बहुत देर नहीं ठहर सकता था। धीरे धीरे इस साम्राज्य के रोग ने उत्तर भारत के स्वतन्त्र जनपदों के अस्तित्व को नष्ट कर दिया। लोग अपने अपने जनपदों की स्वतन्त्र सत्ता को भूल गए। विदेशियों के आक्रमण के समय इस जनपद या प्राचीन राष्ट्रीय अस्तित्व के नष्ट हो जाने से जो हानि हुई उसका फल आज तक भारतवासी भोग रहे हैं।

भारत में पृथक् राज्य स्थापित होने से आपस में लड़ाई रहा करेगी, अतः पृथक् राज्य बनाना अनुचित होगा इत्यादि बातें वर्त-

मान विषय से बाहर की हैं। इस सम्बन्ध में इतना कहना प्रर्याप्त होगा कि योरप के महायुद्ध के कारण यह कोई नहीं कहता है कि वहाँ के राज्यों को स्वतंत्र नहीं रखना चाहिए, क्योंकि वे आपस में इस भयङ्कर रीति से लड़ते हैं। भारत की आजकल की शान्ति का कारण एक राज्य का होना नहीं है, किन्तु उसकी मृतप्राय अवस्था का होना है। यह शान्ति-निकेतन की शान्ति नहीं है, किन्तु स्मशान की शान्ति है। तात्पर्य यह है कि यद्यपि आजकल भारत में एक राज्य है, किन्तु यह बात अस्वाभाविक है। भारत का एक स्वाभाविक राज्य नहीं हो सकता।

भारतवर्ष में प्रत्येक प्रकार के हानिलाभ की विभिन्नता है

भारतवर्ष की भाषा तथा राज्य-सम्बन्धी एकता के प्रश्न पर विचार करने के उपरान्त राष्ट्र के तीसरे मुख्य लक्षण—हानिलाभ की एकता—पर विचार करना अनुचित न होगा। व्यक्तिगत, सामाजिक तथा प्रादेशिक हानि-लाभ की जितनी विभिन्नता भारत में मिलती है, उतनी कदाचित् ही किसी अन्य एक देश कहलाने वाले भूमि-भाग में मिलती हो। वर्तमान समय में भारत में व्यक्तिगत स्वार्थ की मात्रा दिन दिन बढ़ती जा रही है। इसका दृश्य घरों में विशेष रूप से देखने को मिलता है। जहाँ धन अथवा भूमि के लिए सहोदर भाइयों के आपस में लड़ने के सहस्रों उदाहरण मिलते हों, जहाँ पति-पत्नी, सास-बहू तथा पिता पुत्र की पारस्परिक कलह एक साधारण बात मानी जाती हो, तथा जहाँ पड़ोसी पर विपत्ति पड़ने पर दूसरा पड़ोसी हँसता

हुआ दिखलायी दे सकता हो, वहाँ व्यक्तिगत स्वार्थ अत्यन्त बढ़ा-चढ़ा मानना पड़ेगा। व्यक्तिगत स्वार्थ सभी में होता है। योरप के लोगों में भी यह है, किन्तु राष्ट्र का स्वार्थ वे सदा इसके ऊपर रखते हैं। मुसलमानों में भी यह है, किन्तु धर्म के स्वार्थ को वे इस के ऊपर स्थान देते हैं। परन्तु आज कल को भारतीय जनता का आदि तथा अन्त सब व्यक्तिगत स्वार्थ में ही है।

सामाजिक हानि-लाभ की एकता पर भी आजकल भारत के लोगों का ध्यान नहीं है। समाज का संगठन ही ऐसा है कि उस पर ध्यान नहीं दिया जा सकता। यह बात कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जावेगी। मान लीजिये यदि वर्तमान अंग्रेज़ी सरकार ऐसा नियम बना दे कि ब्राह्मण जाति के लोगों को सरकारी नौकरी नहीं मिलेगी, तो इस से अन्य जाति के भारतीयों की कोई हानि न होगी। वास्तव में उनका लाभ ही होगा, क्योंकि जो स्थान ख़ाली होंगे, वे इन अन्य जाति वालों के हिस्से में पड़ेंगे। यदि इस सम्बन्ध में भारत में आन्दोलन हुआ, तो स्वाभाविक है कि केवल ब्राह्मण ही उसमें भाग लेंगे। हाँ, अपने इस स्वार्थ के कारण, कि आज तो ब्राह्मणों के सम्बन्ध में ऐसा नियम बना है कल को कहीं हम लोगों में से किसी जाति के सम्बन्ध में भी ऐसा नियम न बन जाय, यदि अन्य जाति के लोग कुछ सहानुभूति प्रकट करें तो यह दूसरी बात है। एक दूसरा उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि किसी सरकारी दफ़्तर में अग्रवाल वैश्य हेड-क्लर्क है और किसी कुरमी की अर्ज़ी किसी क्लर्क की

जगह के लिए आती है। इस अवस्था में हेड क्लर्क महोदय का यह प्रयत्न करना कि वह कुरमी उस स्थान पर न हो कुछ आश्चर्य-जनक नहीं समझना चाहिए। उनकी विचारशैली कुछ निम्न प्रकार की होगी। 'एक दूसरा अग्रवाल ठिकाने लग जाता तो अच्छा था। अगर किसी अग्रवाल भाई का हम से भला न हुआ, तो हमारे यहाँ रहने से लाभ ही क्या है? फिर दूसरे अग्रवाल के आजाने से दफ़्र में उठने-बैठने तथा खाने-पीने का भी आराम हो जायगा। यदि यह अपने मोहल्ले में रहने को आ गया तो मेल का दूसरा घर हो जायगा, जो समय कुसमय काम आवेगा। आगे भी अपनी बिरादरी वालों के बाल-बच्चों को तरक्की करने का सहारा मिलेगा। कुरमी के साथ न खुलकर उठ-बैठ सकते हैं, न खा-पी सकते हैं; न रंज* और .खुशी में सच्ची सहायता कर सकते हैं।' भारत के वर्तमान सामाजिक संगठन के अनुसार यह विचारशैली बिलकुल ठीक है। परन्तु विचारणीय बात तो यह है कि जिस देश में इस प्रकार की सहस्रों जातियाँ हों, वहां सामाजिक हानि-लाभ की एकता कैसे कही जा सकती है।

मध्य कालीन भारत में भी इस सामाजिक विभिन्नता के कारण देश में ऐक्य होने में सदा बाधा रही। यह विभिन्नता ही मुख्य कारण थी, जिस से निकट ऐतिहासिक काल में विदे-

---

* भारत की कुछ जातियों में ऐसा भी नियम है कि मृतक शरीर को दूसरी जाति के लोग नहीं छू सकते।

शियों को भारत पर अधिकार करने में सहायता मिली। युद्ध का कार्य्य क्षत्रिय जाति का माना जाता था। देश की रक्षा के लिए तो नहीं, किन्तु अपने राज्यों की रक्षा के लिए ये क्षत्रिय जान तोड़ कर विदेशियों से लड़ते थे। यदि युद्ध में क्षत्रियों की विजय हुई तब तो ठीक है, नहीं तो इनका राज्य विदेशी छीन लेते थे और बचे हुए क्षत्रिय देश छोड़ कर चले जाते थे। प्रजा चुपचाप विदेशियों के शासन को स्वीकार कर लेती थी। ब्राह्मण कदाचित सोचते थे कि हमारा धर्म तो पठन-पाठन का है। "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः"। क्षत्रिय युद्ध करें। यदि ये हार गये, तो हम क्या कर सकते हैं! किसान सोचते थे कि हमें तो सदा खेती करना और किसी दूसरे को कर देना है—"कोउ नृप होउ हमहि का हानी"। यदि किसान क्षत्रियों को सहायता देते भी और विदेशियों को पराजित करने में सफल होते, तो भी क्या ये विजेता-किसान समाज की दृष्टि में सच्चे राजा, सरदार अथवा सिपाही हो सकते थे? कदापि नहीं। ऐसी अवस्था में ब्राह्मण इन लोगों को क्षत्रिय बन्धु कह कर अपमान करने को उद्यत रहते। क्षत्रिय कहते कि हल की मुठिया छोड़ तलवार की मूंठ पकड़ना क्या कभी किसान को आ सकता है? स्वयं किसान ही इन देश रक्षकों को द्वेष तथा घृणा की दृष्टि से देखते। शूद्रों तथा अन्य "नीच जातों" का तो कहना ही क्या है—इनका तो सदा सेवा करना ही धर्म है।

ये सब केवल कल्पित विचार मात्र नहीं हैं। भारत के

इतिहास में सचमुच बराबर ऐसा हुआ है। मुसलमानों के आक्रमण के समय में दिल्ली तथा कन्नौज इत्यादि के क्षत्रिय राजाओं का इन विदेशियों के साथ युद्ध करना तथा पराजित हो जाने पर विन्ध्य के जंगलों तथा राजस्थान की मरुभूमि की शरण लेना और उत्तर भारत के ब्राह्मण, वैश्य तथा शूद्र कहलाने वाली प्रजा का चुपचाप विदेशियों के शासन में रहते रहना—ये सब बातें अभी थोड़े ही दिन की हैं।

अभी सौ वर्ष पूर्व जब देश का राज्य मुसलमान शासकों के हाथ से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ में गया था, तब प्रजा की यह उदासीनता और भी बढ़ गयी थी; क्योंकि जन्म से राज्य का काम करने का अधिकार रखने वाले प्रजा के प्रतिनिधि स्वरूप क्षत्रिय उस समय उत्तर भारत में प्रायः रह ही नहीं गए थे। यदि इस सामाजिक जाति सम्बन्धी विभिन्नता का प्राबल्य न होता, तो विदेशियों का भारत को विजय करना ऐसा सरल न होता और फिर सैकड़ों वर्ष तक सुख पूर्वक राज्य करना तो असंभव ही था।

भारत में व्यक्तिगत तथा सामाजिक हानि-लाभ की विभिन्नता का क्या रूप है, यह हम दिखला चुके हैं। अब हमें प्रादेशिक विभिन्नता पर विशेष विचार करना है, क्योंकि राष्ट्रीयता का इस से बहुत निकट का सम्बन्ध है। आर्थिक हानि-लाभ के भिन्न होने के रूप में प्रादेशिक विभिन्नता स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। यदि कोई बंगाली, पञ्जाबी, या मद्रासी किसी ऊँचे पद पर हो, तो वह अपने प्रदेश के लोगों को लाने का बराबर प्रयत्न करता है।

यह स्वाभाविक है। कुछ प्रदेशों के लोग तो कभी कभी इस प्रादेशिक स्वार्थ के आगे जाति के स्वार्थ को भी भुला देते हैं। बङ्गाली ब्राह्मण महाराष्ट्र ब्राह्मण के सामने बङ्गाली कायस्थ को अधिक निकट समझता है। प्रादेशिक हानि-लाभ की यह विभिन्नता निम्नलिखित उदाहरण से अधिक स्पष्ट रूप से विदित होगी। मान लीजिए कि बंगाल प्रान्त के सब बड़े बड़े स्थानों पर महाराष्ट्र प्रान्त के लोग सुयोग्य होने के कारण नौकर रख दिए जायँ। इस अवस्था में बङ्गाल की आर्थिक दशा पर क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या बङ्गाल के लोगों के कमाये धन का एक बड़ा भाग बंबई या पूना में नहीं पहुँच जायगा, जिसका उपयोग महाराष्ट्र के नगरों में विशाल भवन बनने, महाराष्ट्र लोगों की सन्तानों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने तथा महाराष्ट्र के व्यवसाय की उन्नति करने में होगा? साथ ही बङ्गाल में बाँस की झोपड़ियाँ फूस की झोपड़ियों में परिवर्तित होने लगेंगी। होनहार बङ्गाली युवकों को अयोग्य बतलाये जाकर क्लर्की में अपने जीवन नष्ट करने पड़ेंगे तथा बंगाल का अपना व्यवसाय नष्ट होने लगेगा। आर्थिक हानि के सिवा बंगाल की भाषा, विद्या, धर्म तथा सामाजिक जीवन पर जो भारी प्रभाव पड़ेगा, वह भिन्न है। प्रादेशिक हानि-लाभ की विभिन्नता को स्पष्ट करने वाली मुख्य बात यह है कि बङ्गाली लोग महाराष्ट्रों से ऐसा ऐक्य करने को कदापि उद्यत न होंगे।

इस सब से यह स्पष्ट हो गया होगा कि भारत में किसी प्रकार के भी हानि-लाभ का सुदृढ़ ऐक्य नहीं है—न व्यक्तिगत, न

सामाजिक और न प्रादेशिक। आदर्श रूप से होना क्या चाहिए यह भिन्न प्रश्न है इससे इस समय हमारा सम्बन्ध नहीं है।

भारतवर्ष एक देश नहीं कहा जा सकता

अब अन्तिम मुख्य प्रश्न देश की एकता का रह जाता है। वर्तमान भौगोलिक परिभाषा के अनुसार भारतवर्ष देश (country) नहीं किन्तु उप-द्वीप (Sub-continent) है। योरेशिया महाद्वीप में पाँच उप-द्वीप हैं (यह बात प्राचीन परिभाषा में इस प्रकार कही जा सकती है कि जम्बू द्वीप में पाँच खण्ड अथवा वर्ष हैं) अर्थात् योरुप, पश्चिमी मुसलमानी अन्तरीप, भारत, चीन, तथा उत्तर में साइबीरिया का निर्जन भाग। क्षेत्रफल में भारत रूस को छोड़कर शेष सम्पूर्ण योरप उप-द्वीप के बराबर है, जिसमें प्रायः सोलह भिन्न भिन्न देश माने जाते हैं। प्राचीन काल में भी भारत देश नहीं कहलाता था, किन्तु खण्ड अथवा वर्ष कहलाता था। संकल्प में अब भी "जम्बू द्वीपे, भरत खण्डे, आर्यावर्ते" इत्यादि पढ़ा जाता है। उस समय लोग भारतीय होने पर गौरव नहीं समझते थे, किन्तु मगध, पंचाल अथवा सौराष्ट्र-वासी होने पर गर्व करते थे।

भौगोलिक स्थिति के अनुसार भारत तीन मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है—१. हिमालय का भूमि भाग, २. उत्तर के विस्तृत मैदान, जो बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब के समुद्र तक फैला है, तथा ३. दक्षिण का तिकोना पहाड़ी किन्तु समतल भूमि भाग। इन बड़े विभागों के भी स्वाभाविक उप-विभाग हैं, जिनको

भौगोलिक परिभाषा के अनुसार देश कहा जा सकता है। उत्तर के मैदानों में पंजाब और बंगाल जल-वायु, भूमि, समुद्र से उँचाई तथा पैदावार आदि में एक दूसरे से बहुत विभिन्न हैं। मालावार और राजस्थान की कोई तुलना नहीं हो सकती। इस प्रादेशिक विभिन्नता का प्रभाव अन्य बातों पर पड़ता है। देश-वासियों की बनावट, रहन-सहन, रीति-रिवाज, सामाजिक-संगठन, भाषा, धर्म तथा राज्य आदि सभी बातें अलग अलग साँचों में ढलने लगती हैं। आर्थिक हानि-लाभ भी भिन्न हो जाते हैं। उड़ीसा में अकाल पड़ने पर मालवा अथवा पंजाब पर इस बात का कोई सीधा असर नहीं पड़ता। यदि बाहर जाने वाले गेहूँ पर कर लगाया जाय तो इसका असर पंजाब पर विशेष पड़ेगा, क्योंकि गेहूँ उसी भूमि-भाग में अधिक पैदा होता है—बंगाल को इससे कुछ अधिक हानि-लाभ न होगा। कोई भी ऐसा भूमि भाग एक देश नहीं कहला सकता, जहाँ एक ओर बारहो महीने बर्फ़ जमा रहे और दूसरी ओर भट्टी की सी गर्मी रहे; एक ओर वर्ष में सैकड़ों इंच पानी गिर जाय और दूसरी ओर एक बूंद भी न गिरे। जिस भूमि-भाग में हज़ारों नदियाँ, सैकड़ों पहाड़, सैकड़ों मील रेगिस्तान तथा हज़ारों मीलों में हरे-भरे खेत तथा दुर्गम जंगल हों, वह एक देश कैसे कहा जा सकता है? भारत में देश सम्बन्धी एकता कदापि नहीं है। जैसे योरेशिया महाद्वीप में योरप, चीन तथा मुसलमानी उप-द्वीप पृथक् हैं, वैसे ही भारत भी पृथक् है। हिमालय के कारण यह विभिन्नता और भी स्पष्ट है; किन्तु इसका

यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि भारत एक देश है। इस तरह तो अफ़्रीका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा योरेशिया के द्वीप भी एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् हैं, किन्तु इस कारण ये देश नहीं कहलाते।

सम्पूर्ण भरतखण्ड पर विदेशियों का शासन हो जाने के कारण भारत को एक देश मानने का विचार कुछ लोगों के मन में पैठ सा गया है। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न देश इन विदेशी साम्राज्यों में प्रान्त कहलाए जाने लगे। आज कल के अंग्रेजी साम्राज्य में भी भारत के ये प्रान्त क्षेत्रफल में योरप के देशों के बराबर हैं। भारत के कुछ प्रान्त अपने इस भूले हुए गौरव को फिर याद कर रहे हैं। बंगाल के बड़े बड़े विद्वान, जैसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अरविंद घोष तथा वङ्किमचन्द्र चटर्जी इत्यादि "बंग आमार देश" कहने में गौरव समझते हैं। यह प्रान्तिक संकोच नहीं है, किन्तु स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति है।

राष्ट्रीय दृष्टि से भारतवर्ष में धर्म की विभिन्नता

हम देख चुके कि एक राष्ट्र होने के लिए आवश्यक लक्षण—भाषा, राज्य, हानि-लाभ तथा देश की अनिवार्य एकताएँ—भारतवर्ष में नहीं हैं। कुछ अन्य गौण बातें हैं, जो राष्ट्रीयता के लिये नितान्त आवश्यक तो नहीं मानी जाती किन्तु उनके होने से राष्ट्र और भी अधिक सुदृढ़ हो जाते हैं। ऊपर बतलाया जा चुका है कि इनमें धर्म (Religion) और वर्ग (Race) की समानतायें मुख्य हैं। स्थूल रूप से धर्म की एकता भारत में है। भारतवर्ष हिन्दू धर्मा-

वलम्बी माना जाता है। मुसलमान धर्म के मानने वाले भी अब बहुत बड़ी संख्या में भारतीय लोग हो गये हैं। भारत की जन-संख्या ३२ करोड़ है, जिसमें प्रायः २१ करोड़ हिन्दू धर्म को तथा ७ करोड़ के लगभग मुसलमान धर्म्म को मानते हैं। इनके अति-रिक्त बहुत से भारतीय ईसाई, पारसी, यहूदी तथा बौद्ध इत्यादि धर्म्मों को मानने वाले भी हैं, किन्तु इनकी संख्या हिन्दू तथा मुसलमान धर्म्मों के मानने वालों से बहुत कम है।

धर्म और राष्ट्रीयता का बहुत निकट का सम्बन्ध नहीं है। सम्पूर्ण योरप ईसाई धर्म को मानता है, किन्तु इससे वहाँ भिन्न भिन्न राष्ट्रों के पृथक रहने में कोई बाधा नहीं पड़ती। अमेरिका के संयुक्त राज्य में भी ईसाई धर्म का प्रचार है, किन्तु इस कारण वह योरप के देशों के साथ एक ही शासन में रहना पसन्द न करेगा। बौद्ध धर्म का प्रचार किसी समय प्रायः सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप में हो गया था, किन्तु इससे एशिया महाद्वीप एक राष्ट्र हो गया था ऐसा नहीं कहा जा सकता। आज कल भी मुसलमान धर्म के मानने-वाले मिस्र, टर्की, अरब, फ़ारिस तथा अफ़गानिस्तान आदि पृथक् स्वतन्त्र राष्ट्र हैं, किन्तु इस कारण इन सब के एक राष्ट्र होने पर कोई ज़ोर नहीं देता। इतना अवश्य है कि एक ही धर्म के मानने वाले भिन्न भिन्न राष्ट्रों में आपस में कुछ अधिक सहानुभूति रहती है। इसके विपरीत एक ही राष्ट्र में भिन्न भिन्न धर्मों के मानने वालों के होने से राष्ट्रीय ऐक्य में कठिनाई पड़ती है। भारत की हिंदू मुस्लिम समस्या इसका जीता जागता उदाहरण है।

भारत के मुख्य हिन्दू धर्म के भी विशेष रूप भिन्न भिन्न भागों में पाये जाते हैं। पञ्जाब में नानक-मत का अधिक प्रचार है। बङ्गाल की दुर्गा पूजा तथा महाराष्ट्र की गणेश पूजा प्रादेशिक धार्मिक उत्सव हैं। यदि किसी ने काशी में दुर्गा पूजा और दशहरे का उत्सव साथ साथ देखा होगा, तो उसे बंगाल और संयुक्त प्रान्त के धार्मिक भावों का अन्तर स्पष्ट रूप से विदित हो गया होगा। दुर्गा पूजा के दिन काशी का प्रत्येक बंगाली दशाश्वमेध पर दिखलाई पड़ेगा। उस दिन मालूम पड़ता है कि काशी मानो हुगली के किनारे बसी है। दशहरे पर ढूँढ़ने पर भी बंगाली कठिनाई से मिलता है। दशहरा भी तो हिन्दू धर्म का बड़ा भारी उत्सव है और बंगाली भी हिन्दू हैं, तब फिर बंगालियों को उसके मानने में उत्साह क्यों नहीं होता? कारण स्पष्ट है। बंगालियों ने हिन्दूधर्म के दुर्गा पूजा के रूप को अपना रक्खा है, इसलिए उस ओर ही उनका उत्साह झुकता है। इससे इतना तो स्पष्ट हो जाना चाहिए कि भारत के प्रधान हिन्दू धर्म में भी कुछ प्रादेशिक विभिन्नतायें हैं। साम्प्रदायिक तथा दार्शनिक विचारों की विभिन्नता पर विचार करना यहाँ असंगत होगा।

भारतवर्ष में कई वर्गों के लोग बसते हैं

वर्ग (Race) की एकता का प्रश्न भी राष्ट्रीयता के लिए गौण है। साधारणतया भारतीय आर्य सन्तान कहलाते हैं, किन्तु वैज्ञानिक निर्णय के अनुसार निम्न-लिखित सात वर्गों के लोग भारत में पाये जाते हैं:—

१. आर्य—काश्मीर की घाटी में, पञ्जाब में सिंधु नदी से लेकर अम्बाला के समीप तक, और राजस्थान में।

२. सिदियन-द्राविड़—महाराष्ट्र सिन्ध तथा गुजरात में ।

३. आर्य-द्राविड़ अथवा हिन्दुस्तानी—सरहिन्द, संयुक्तप्रान्त और बिहार में ।

४ मंगोल-द्राविड़—बंगाल और उड़ीसा में ।

५. तुर्की-ईरानी—पश्चिमोत्तर प्रान्त, बलूचिस्तान, तथा पंजाब और सिंध के उन भागों में जो सिन्धुनदी के पश्चिम में हैं ।

६. मंगोल—आसाम, बर्मा, भूटान और नैपाल में तथा संयुक्त-प्रान्त, पंजाब और काश्मीर के हिमालय के भीतरी प्रदेशों में ।

७. द्राविड़—दक्षिण भारत में ।

सम्भव है, यह वर्गीकरण पूर्ण रूप से शुद्ध न हो, तो भी सम्पूर्ण भारतीयों को आर्य वर्ग का मानना भी तो अत्युक्ति ही होगी । अपढ़ आदमी भी गोरे काश्मीरी और काले आदि-द्राविड़, पंजाबी सिक्ख और बंगाली बाबू, महाराष्ट्र ब्राह्मण और नैपाली गोरखे के शरीर की बनावट एक सी बताने में हिचकेगा । जैसा ऊपर कहा जा चुका है, धर्म के समान वर्ग का भी राष्ट्रीयता के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध नहीं है । अतः इस बात पर अधिक विचार करना यहाँ आवश्यक नहीं है ।

भारतवर्ष में वास्तविक राष्ट्रीयता के भाव का अभाव

वर्तमान समय में राष्ट्रीय लहर का सम्पूर्ण भारत में घूम जाना स्वाभाविक है, किन्तु यह लक्षण चिरस्थायी नहीं है। जिस दिन भारत के शासन में परिवर्तन हुआ उसी दिन इसका यह रूप पलट जायगा। यदि तनिक ध्यान देकर देखिये, तो समस्त भारत के पूजनीय राष्ट्रीय वीर तक एक नहीं रहे हैं। महाराष्ट्र पति शिवाजी के नाम से बंगाली किसान के रोंगटे हर्ष से नहीं, कदाचित् भय से अवश्य खड़े हो सकते हैं। पंजाब-केसरी महाराज रणजीत सिंह को महाराष्ट्र बालक नहीं जानता, और न उसके हृदय में उस नाम से उल्लास ही होता है। यदि धार्मिक तथा साहित्यिक पुरुषों पर दृष्टि डाली जाय, तो यह विभिन्नता और भी स्पष्ट हो जाती है। गुरुनानक और चैतन्य स्वामी का नाम क्या भारत के प्रत्येक भाग में बराबर आदर से लिया जाता है? तुकाराम और रामदास जहाँ वेद वाक्य की तरह पढ़े जाते हैं, वहाँ चंडीदास और विद्यापति को कोई नाम से भी नहीं जानता। यदि वर्तमान नेताओं की ओर ध्यान दें, तो भी यह प्रादेशिक भाव मिलेगा। भारत की वर्तमान राष्ट्रीय लहर की नींव गहरी नहीं है।

राष्ट्र के सम्पूर्ण लक्षणों को भारत पर सूक्ष्म रूप से घटाते हुए हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि भारत एक राष्ट्र नहीं है, बल्कि योरप तथा अन्य भूमि भागों के समान एक विशाल उपद्वीप, खण्ड

अथवा वर्ष है, जहाँ भिन्न भिन्न भाषा, राज्य, हानि-लाभ तथा देश इत्यादि रखने वाले बहुत से राष्ट्रों के लोग बसते हैं। प्राचीन काल की तरह यदि इन्हें स्वतन्त्रता मिल जाय, तो ये फिर अपने पृथक् पृथक् स्वाभाविक राष्ट्र स्थापित करके हेल-मेल से विकास को प्राप्त होते हुए सुख से रहने लगेंगे।

---

३. हिन्दी राष्ट्र

हिन्दी बोलने वाले हमारे सच्चे देशवासी हैं

अब यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि जब भारतवर्ष एक राष्ट्र नहीं है तब हम किसे अपना राष्ट्र मानें। इसका उत्तर देना अब कठिन नहीं है। साधारणतया हम कह सकते हैं कि राष्ट्र की एक मुख्य तथा प्रत्यक्ष पहिचान भाषा की एकता है, अतः भारत के जितने भूमि-भाग में हमारी भाषा, अर्थात् हिन्दी या हिन्दुस्तानी मातृ-भाषा की तरह बोली और समझी जाती हो वह हमारा राष्ट्र है। इस परिभाषा के अनुसार दक्षिण भारत के तामिल, तेलगू, मलयायम तथा कनारी इत्यादि द्राविड़ भाषा बोलने वाले भूमि-भाग तो निकल ही जावेंगे; साथ ही आसामी, बंगाली, उड़िया, मराठी, गुजराती तथा सिन्धी प्रदेश भी छोड़ने पड़ेंगे। पंजाब में नगरों में पढ़े लिखे लोग लिखने पढ़ने में हिन्दुस्तानी का व्यवहार अवश्य करते हैं, किन्तु साधारण जन-समुदाय तथा वास्तव में इन नगर वासियों की भी मातृभाषा पंजाबी ही है, हिन्दुस्तानी नहीं। पंजाब के गाँव का आदमी हिन्दुस्तानी भली प्रकार समझ भी नहीं सकता, बोल सकना तो दूर की बात है। अतः पंजाब की भी पृथक् गिनती करनी पड़ेगी। काश्मीर से लेकर भूटान तक के हिमालय के प्रदेशों में बहुत सी भिन्न भिन्न पहाड़ी भाषाएँ

बोली जाती हैं जिन्हें हम लोग नहीं समझ सकते, अतः इस सम्पूर्ण पहाड़ी भूमि-भाग को भी इस सिद्धान्त के अनुसार छोड़ना पड़ेगा।

परन्तु पश्चिम में राजपूताने के जैसलमीर राज्य से लेकर पूर्व में बिहार के भागलपुर ज़िले तक तथा उत्तर में यमुना और सतलज के बीच में अम्बाला नगर से लेकर दक्षिण में मध्य प्रान्त के रायपुर तक के भारत के शेष मध्य भाग के इस प्रकार सहसा विभाग करना सरल नहीं है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि इस सम्पूर्ण भूमि-भाग में एक ही भाषा—हिन्दुस्तानी—बोली जाती है, यद्यपि लोगों की ठेठ बोलियों के रूप कुछ कुछ भिन्न अवश्य हैं। भाषा सर्वे के अनुसार इस भूमि-भाग में भी तीन या चार भिन्न भाषायें हैं। बिहार प्रान्त में दर्भङ्गा की मैथिली तथा पटना की मघई बोलियाँ और बनारस–गोरखपुर की भोजपुरी बोली, यह तीनों मिलाकर बिहारी-भाषा के नाम से एक जगह एकत्रित की गई हैं। राजपूताने की मारवाड़ी, मेवाड़ी जयपुरी और मालवी बोलियों को राजस्थानी भाषा नाम दिया गया है। शेष मध्य भाग की भाषा हिन्दी मानी गई है, यद्यपि इसके भी पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी के नाम से दो भिन्न रूप माने गये हैं। मेरठ के निकट की खड़ी बोली पानीपत के चारों ओर की बांगड़ू, मथुरा की ब्रजभाषा, कन्नौज की कन्नौजी तथा बुंदेलखण्ड की बुंदेली, इन पाँच बोलियों को पश्चिमी हिन्दी कहा है; तथा अवध की अवधी, बघेलखण्ड की बघेली और छत्तीसगढ़ की छत्तीस-

गढ़ी इन तीन को पूर्वी हिन्दी नाम दिया गया है। अतः भाषासर्वे के आधार पर भारत के इस विस्तृत मध्य भाग में चार नहीं तो तीन भाषायें अवश्य ही माननी पड़ेंगी। यदि भाषा के स्थान पर बोलियों के आधार पर विभाग करने के सिद्धान्त को माना जाय तब तो पन्द्रह सोलह विभाग करने पड़ेंगे।

किन्तु राजनीति-शास्त्र में राष्ट्र की एक भाषा होने के सिद्धान्त का तात्पर्य भाषा-शास्त्र के सिद्धान्त से भिन्न है। व्याकरण के सूक्ष्म रूपों के आधार पर भाषाओं तथा बोलियों का पृथक्करण भाषा-शास्त्र का क्षेत्र है और यह वहाँ ही शोभा देता है। राजनीति-शास्त्र में एक भाषा-भाषी लोगों का एक राष्ट्र में होने का केवल इतना ही तात्पर्य है कि राष्ट्र में छोटे से बड़े तक, तथा बच्चों से बूढ़े तक सब लोग एक दूसरे की बात को स्वाभाविक रीति से अच्छी तरह समझ सकें, जिससे व्यर्थ को किसी कृत्रिम माध्यम का सहारा लेने की आवश्यकता न पड़े। इस अर्थ में राजस्थान से लेकर बिहार तक तथा सरहिन्द से लेकर छत्तीसगढ़ तक की भाषा एक ही कही जा सकती है। इस समस्त भूमि-भाग में व्यवहार की केवल एक ही भाषा हिन्दुस्तानी है, जिसका यहाँ की बोलियों से इतना निकट का सम्बन्ध है कि किसी भी बोली के बोलने वाले से इस माध्यम के द्वारा बड़ी सरलता से बात चीत की जा सकती है तथा उस मनुष्य की बोली भी बहुत कुछ समझ में आ जाती है। हिन्दी-भाषा-भाषी प्रदेश के सम्बन्ध में तो यह प्रायः निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है। मेरठ, रायबरेली

और रायपुर के किसान एक दूसरे से भली प्रकार बातचीत कर सकते हैं, किन्तु बिहार और राजस्थान के सम्बन्ध में यह बात यकायक नहीं कही जा सकती। बीकानेर का किसान भागलपुर के किसान की बोली कदाचित् ठीक ठीक नहीं समझ सकेगा। इनकी बोलियाँ एक दूसरे से इतनी दूर हो गई हैं कि उनमें साम्य कम है और विभिन्नता अधिक। इस सम्बन्ध में भली प्रकार परीक्षा होनी चाहिए। यदि यह बात ठीक निकले तो भाषासर्वे के अनुसार बिहार और राजस्थान को हिन्दी भूमि-भाग के साथ रखने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इस अवस्था में एक बात और करनी होगी। बिहार और राजस्थान को अपनी अपनी बोलियों में से एक एक को छाँट कर उसे अपनी साहित्यिक-भाषा बनानी होगी। यह सब जगह होता आया है। हिन्दी के भूमि-भाग में मेरठ के चारों ओर की बोली आजकल सम्पूर्ण हिन्दी-भाषा-भाषियों की सर्वमान्य भाषा हो गई है। प्रायः सौ वर्ष पूर्व तक साहित्य की दृष्टि से यह स्थान मथुरा की बोली ब्रजभाषा को मिला हुआ था।

इस सब से तात्पर्य यह निकला कि भारत के इस बड़े भूमि-भाग में भी पूर्ण रूप से भाषा का ऐक्य नहीं है। प्राचीन "मध्य देश" की भाषा अवश्य एक हिन्दी या हिन्दुस्तानी है, अतः इतने भूमि-भाग में राष्ट्र का प्रथम लक्षण—भाषा का ऐक्य—अवश्य घटित होता है। तब इतना भूमि-भाग तो निस्सन्देह अपना राष्ट्र कहा जा सकता है। बिहारी और राजस्थानी भाषाओं के भूमि-

भागों के सम्बन्ध में यह बात इतने निश्चयात्मक रूप से नहीं कही जा सकती। साधारण रूप से यह भूमि-भाग भी हिन्दी राष्ट्र के ही अन्तर्गत हैं क्योंकि इन भूमि-भागों की जनता ने भी हिन्दी या हिन्दुस्तानी को ही साहित्यिक भाषा के रूप में अपना रक्खा है।

हिन्दी भाषा-भाषी एक शासन में होने चाहिये

राष्ट्र के लक्षणों में भाषा की एकता मुख्य अवश्य है, किन्तु साथ ही अन्य लक्षणों का होना भी आवश्यक है। भाषा के बाद राज्य के ऐक्य का स्थान है। आज कल वैसे तो बंगाल से लेकर सिन्ध तक तथा पंजाब से लेकर केरल तक का प्रायः सम्पूर्ण भारत एक ब्रिटिश शासन में ही है, किन्तु साथ ही संसार के स्वतन्त्र राष्ट्रों के टक्कर के ब्रिटिश-भारत के प्रान्तिक विभाग इस शासन के ऐक्य में कुछ कठिनाई अवश्य उपस्थित करते हैं। इनके अतिरिक्त सैकड़ों देशी राज्य भी भारत के इस एक छत्राधिपत्य में कुछ बाधक होते हैं। इन प्रान्तों और देशी राज्यों के विभागों के कारण हिन्दी-भाषा-भाषी लोग भी एक शासन में नहीं हैं। वे ब्रिटिश भारत के संयुक्त-प्रान्त, मध्य प्रान्त और पंजाब तथा मध्य-भारत और राजस्थान के कुछ देशी राज्यों में बँटे हुए हैं। यह अवस्था तब है जब बिहार और राजस्थान की गिनती नहीं की है। इनमें बिहार तो प्रायः एक प्रान्तिक शासन में हो गया है, किन्तु राजस्थान का एक शासन में होना दूर की बात है। राजस्थान में छोटे बड़े शासकों के रहने पर भी उन सब के ऊपर एक दृढ़ शासन के बन्धन के होने से

कार्य्य निकल सकता है। कुछ कुछ ऐसा ही रूप वहाँ आज कल है भी।

बहुत प्राचीन समय में शासन के कुछ स्वाभाविक विभाग हिन्दी-भाषा-भाषी भूमिभाग में थे। ये जनपद कहलाते थे। किसी नदी के किनारे कुछ दूर तक बसे हुए आर्य्य लोग, जो उस समय की स्थिति के अनुसार एक दूसरे से सुविधापूर्वक मिल जुल सकते थे, एक पृथक् केन्द्र मान कर अपना स्वतन्त्र शासन स्थापित कर लेते थे। यह केन्द्र जनपद की राजधानी होती थी जहां जनपद और राजधानी के लोगों की अनुमति से चुना हुआ राजा मंत्रियों की सहायता से जनपद की रक्षा के लिए तत्पर रहा करता था। रामायण में कोसल जनपद के इस प्रकार के शासन की कुछ कुछ झलक देखने को मिलती है।

जब प्रजाबल क्षीण हो गया तो जनपद तथा पुरवासियों की सुनवाई शासन में नहीं रही। वंश परम्परा के अनुसार राजा होने लगे, चाहे वे योग्य हों या अयोग्य। ये राजा अपने कुल के लोगों तथा कुछ मंत्रियों की सहायता से शासन चलाते थे। प्रजा का हाथ शासन में से हट गया। महाभारत काल में प्रायः यही अवस्था थी। उस समय इन राजवंशों के लिए जनपद थे, जनपदों के लिए राजवंश नहीं थे। यह इस देश की शासन प्रणाली में पहला किन्तु बहुत बड़ा पतन था जिसका फल अच्छा नहीं हो सकता था। कुछ थोड़े से लोगों के हाथ में सम्पूर्ण देश की शक्तियों का इकट्ठा हो जाना तथा प्रजा के अज्ञान

भुलावे अथवा धोके के कारण उस संपूर्ण शक्ति का उपयोग करने की इन थोड़े से लोगों के हाथों में पूर्ण स्वतन्त्रता होने का सदा एक ही फल हुआ है—जो भारत वर्ष में महाभारत के युद्ध में देखने को मिला था तथा आज कल योरप के महायुद्ध में देखने को मिला।

जनपदों की प्रजा तो पहले ही से शक्तिहीन हो गई थी, महाभारत के बाद ये राजवंश भी बहुत निर्बल हो गये। इसका फल यह हुआ कि किसी एक राजवंश के राजा के शक्तिशाली हो जाने पर पड़ोस के अन्य राजाओं को अपने नाश के रूप में अपनी निर्बलता का कर देना पड़ता था। यह साम्राज्यों का युग था, जिसका उग्र रूप बौद्ध काल से देखने को मिला। बुद्ध भगवान् के समय तक उत्तर भारत में सोलह महाजनपदों के नाम से पृथक् पृथक् राज्य थे। दो तीन सौ वर्ष के अन्दर ही इनका स्वतन्त्र अस्तित्व लुप्त हो गया। ये सोलह महाजनपद तथा साथ ही इनके निकट के अन्य पड़ोसी राज्य मगध के मौर्य्य राजाओं के अधीन हो गये। जनपदों के इन स्वतन्त्र रूपों की नींव पर बनी हुई यह साम्राज्य प्रथा बहुत सराहनीय नहीं कही जा सकती। कुछ काल तक तो जनपदों का पृथक् अस्तित्व इन साम्राज्यों के अन्तर्गत भिन्न भिन्न प्रान्तों के रूप में चला, किन्तु यह अवस्था भी बहुत दिनों नहीं रह सकी।

अपने हाथों से शासन की बागडोर बिलकुल छिन जाने के कारण अब प्रजा की शक्ति दिन प्रति दिन और भी क्षीण होने

लगी। राजवंशों का भी स्थायी रूप नहीं रहा। इस अवस्था में अपनी रगों में पुराने राजाओं का रक्त रखने का गौरव करने वाले मनचले शक्तिशाली पुरुष अपने बाहुबल के आधार पर भारत में राज्यों को बनाने और बिगाड़ने का बीड़ा उठाने लगे। इस काल में इन व्यक्तिगत शासकों की इच्छा तथा शक्ति पर ही पड़ोस के राज्यों की सीमाओं की लकीरें अवलम्बित होती थीं। कैसी अस्वाभाविक बात थी। यह प्रारम्भिक-राजपूत-काल कहा जा सकता है। इस समय पड़ोस के राजा को नष्ट करके अपने राज्य में मिला लेना ही प्रत्येक राज्य का एक मात्र लक्ष्य होता था। घर में जब ऐसी भारी फूट हो तब बाहर वालों का आना स्वाभाविक ही है।

इसी समय अरब के मुसलमानों ने आक्रमण करना आरम्भ किया। घर में वैसे ही निरन्तर संग्राम हो रहा था, विदेशियों से देश की रक्षा कौन करे। राज्य के छिन जाने से, अपने विलास करने के स्वार्थ में बाधा पड़ने का भय देख ये राजा अन्त में कुछ सचेत हो गए। ये शक्तिशाली शासक इन आक्रमणकारियों से सचमुच सिंहों की ही तरह पृथक् पृथक् लड़े, किन्तु अल्प शक्ति रखने वाले साधारण मनुष्य भी एक एक कर के सिंहों के समुदाय को मार सकते हैं, फिर इन आक्रमणकारियों के पास तो अपने धर्मप्रचार के अन्धविश्वास तथा स्वर्णभूमि भारत को लूटने के स्वार्थ के रूप में दो अन्य प्रबल शक्तियां भी थीं जो इन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती थीं। गंगा की घाटी की असहाय

प्रजा के पति ये हिन्दू नरेश एक एक कर के या तो मार डाले गए या हार कर इन्होंने हिमालय की अज्ञात घाटियों, विन्ध्य के दुर्गम बनों अथवा राजस्थान की निर्जन मरुभूमि की शरण ले ली। सच्चे सिंहों के समान इन्हें भी जीता पकड़ लेना सरल न था। इनकी सन्तति अब भी इन बीहड़ स्थानों में देखने को मिल सकती है।

परन्तु गंगा की घाटी की प्रजा अब भी नहीं जगी। पाँच छः सौ वर्ष तक इन पर मुसलमानों का शासन रहा। अन्तिम मुसलमान शासक आरम्भ के उन आक्रमण करने वाले अरब के मुसलमानों से भिन्न हो गए थे। इसका कारण था। इन आक्रमण करने वाले अरब के मुसलमानों ने हमारे देश के बहुत से लोगों को मुसलमान-धर्मावलम्बी बनाया। धीरे धीरे मुसलमानी धर्म मानने वाले इन भारतीयों की संख्या बहुत अधिक हो गई। अन्तिम मुसलमान शासकों के समय में देश में जो सुशासन हो चला था उसका कारण यही था कि देश का शासन प्रायः भारतीय लोगों के हाथ में हो गया था, यद्यपि इनमें से बहुत से मुसलमान-धर्म्मावलम्बी अवश्य थे। अन्तिम मुसलमान शासकों ने एक बार फिर बल पकड़ा और राजपूत राजाओं का सहारा मिल जाने से साम्राज्य स्थापित करने की बीमारी एक बार फिर फैली। इस बार प्रजा को भी बहुत दुःख भोगने पड़े, किन्तु अब तो प्रजा इतनी निर्जीव हो गई थी कि रौंदे जाने पर भी करवट नहीं लेती थी। गंगा की घाटी का मुसलमान शासन से अंग्रेज़ों

के शासन में जाना ठीक वैसा ही था जैसा गिरवी रक्खी हुई चीज़ को दस्तावेज़ बदल कर दूसरे को सौंप देना। क्लाइव ने बंगाल और बिहार के सूबों की दीवानी, कम्पनी बहादुर को ठीक इसी दस्तावेज़ी रीति से दिलाई थी।

शासन के पुराने स्वाभाविक विभाग अब प्रायः पूर्ण रीति से नष्ट हो चुके थे। हमारे इन नये शासकों ने जिस क्रम से हमारे पुराने मालिक मुसलमान अथवा हिन्दू शासकों से ये दस्तावेज़ें छीनी थीं उसी क्रम से ये इन्हें रखते गए। ब्रिटिश भारत का प्रान्तीय विभाग इसी सिद्धान्त के अनुसार—यदि इसे सिद्धान्त कहा जा सकता है—हुआ है। हमारे यहाँ के भोले भाले लोग तो अंग्रेज़ों के इस मनमाने क्रम से बनाए हुये प्रान्तों पर ही गौरव करने लगे हैं। मध्यप्रान्त अपने में कुछ ऐतिहासिक ऐक्य अनुभव करने लगा है, अजमेर का प्रान्त अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पकाना पसन्द करे तो कुछ आश्चर्य नहीं। देहली के नन्हें से प्रान्त की प्रजा अंग्रेज़ी भारत साम्राज्य के केन्द्र होने पर ही गौरव करने लगी है। हमारी गिरी हुई अवस्था की यह पराकाष्ठा है।

गंगा की घाटी के लोगों का भविष्य में राजनीतिक रूप तथा उसका विस्तार यहाँ के पुराने जनपदों या राज्यों के ही ठीक अनुरूप हो, यह सम्भव नहीं। काल तथा स्थिति की विभिन्नता को भुला देना उचित न होगा। एक समय था जब देश में प्रत्येक गाँव अपनी अलग अलग खाई और कच्ची दीवार के सहारे अपनी

रक्षा कर लेता था। उस समय लोग तीर-कमान और तलवारों से लड़ते थे। अब आजकल सत्तर मील तक मार करने वाली तोपों, हवाई जहाज़ों और बेतार की तारबर्क़ी के वैज्ञानिक युग में फ़्रांन्स और इंग्लैण्ड जैसे सुव्यवस्थित शक्ति रखने वाले विशाल राष्ट्र भी अपने को सुरक्षित नहीं समझते, हम जर्जरति लोगों का तो कहना ही क्या है! हमारे नये शासन का रूप विस्तार में तो यहाँ के प्राचीन जनपदों से बड़ा होगा ही, शासन प्रणाली में भी आवश्यकतानुसार उनसे भिन्न होगा। जो हो वर्तमान अवस्था अब बहुत दिनों नहीं ठहर सकती। हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों का शासन के लिये एक स्वाभाविक विभाग—चाहे वह इस समय ब्रिटिश भारत के प्रान्त के रूप में हो अथवा कांग्रेस के सूबे के रूप में—शीघ्र ही बनना चाहिये। यह मानना पड़ेगा कि राष्ट्र का दूसरा लक्षण, एक राज्य का होना, हिन्दी भाषा-भाषी लोगों पर बंगाल इत्यादि की तरह एक प्रान्त के रूप में भी अभी घटित नहीं होता। तभी तो अपने राष्ट्र के स्वरूप का दर्शन भी नहीं होता। भाषा के आधार पर प्रान्त बनाने, पर ही शासन विभाग के ऐक्य से होने वाले लाभों का कुछ कुछ दिग्दर्शन हो सकेगा।

हिन्दी-भाषा-भाषियों का हानिलाभ बहुत बातों में शेष भारत से भिन्न है।

जब एक भाषा होने के स्पष्ट ऐक्य को ही अपने लोग नहीं

समझते तो हानि-लाभ की एकता का सूक्ष्म प्रश्न तो और भी जटिल है। इस संबंध में इस समय इतना ही कहना बहुत होगा कि हिन्दी-भाषा-भाषियों का हानि-लाभ—चाहे वह आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा साहित्यिक किसी प्रकार का भी हो—भारत के अन्य भाषा-भाषियों से पृथक् है और रहेगा। हिन्दी साहित्य की उन्नति के लिए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन काम आवेगा, बंगीय-साहित्य-परिषद् से काम नहीं चलेगा। अपने यहाँ की स्त्रियों को शिक्षित करने के लिए महाराष्ट्र के महिला विद्यालय को धन देने से कोई विशेष लाभ नहीं। हम लोगों के धन के दुरुपयोग को मद्रास की कौंसिल नहीं रोक सकेगी, इस के लिए अपनी कौंसिलों में ही शक्तिशाली होकर लड़ना पड़ेगा। यहाँ के मन्दिरों के सुधार के लिए हमी लोगों को अग्रसर होना पड़ेगा, पंजाब के अकाली वीरों से सहायता मिलने के ध्यान में हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने से लज्जा मालूम होनी चाहिए। यह सच है कि आज कल एक अंग्रेज़ी शासन में होने के कारण भारत के सब भिन्न भिन्न राष्ट्रों की चोटियें एक में बँधी हुई हैं। इस रस्सी के खिंचने या ढीले होने से जो सुख या दुःख होता है उसका अनुभव आजकल भारत के समस्त राष्ट्रों को साथ ही होता है। किन्तु जिस दिन यह रस्सी कटी, उस दिन फिर इसी रूप में बँधे खड़े रहने में शोभा नहीं होगी। हम सब लोग स्वतन्त्रता पूर्वक एक साथ रहते रहें यह दूसरी बात है। कदाचित् यह आवश्यक भी हो।

हिन्दीराष्ट्र गंगा की घाटी में बसता है

राष्ट्र के लक्षणों में देश की एकता का अर्थ केवल इतना ही है कि देश के एक भाग से दूसरे भाग में आने जाने में कठिनाई न होती हो। आजकल विज्ञान की उन्नति के कारण आने जाने तथा समाचार पाने की अनेक सुविधायें हो गई हैं, अतः आज कल के देश, पहले के देशों से बड़े हों तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। देश के ऐक्य में या तो दूरी बाधक होती है या प्राकृतिक दुर्गम बाधायें। तिब्बत और गंगा की घाटी एक देश नहीं कहे जा सकते, क्योंकि बीच में हिमालय का दुर्गम प्राकार है। बंगाल और सिन्ध एक देश नहीं हो सकते, क्योंकि ये एक दूसरे से बहुत दूर हैं, यद्यपि बीच में कोई विशेष प्राकृतिक बाधा नहीं है। इस दूरी अथवा प्राकृतिक बाधा का प्रभाव लोगों पर पड़ता है, इसीलिए देश के ऐक्य के सिद्धान्त को भी राष्ट्र के लक्षणों में मानना पड़ता है। जिस समय उड़ीसा में सहस्रों स्त्री, पुरुष और बच्चे भूख से तड़प तड़प कर प्राण देते हों उसी समय धन-धान्य-पूर्ण गुजरात में लोग विलास में समय-यापन कर रहे हों यह बिलकुल संभव है। इसमें देश की विभिन्नता ही कारण हो सकती है। एक देश में यह बात सम्भव नहीं। जितने लोगों पर सुख दुःख का प्रभाव प्रायः एक सा तथा एक साथ पड़ता हो उतने ही लोगों में आपस में सच्ची सहानुभूति तथा ऐक्य हो सकता है।

उत्तर भारत में इस प्रकार के एक देश का रूप स्थिर करने के

लिये हिमालय प्रदेश को तो छोड़ देना ही पड़ेगा। शेष मैदान में पंजाब की भूमि भी भिन्न है। गंगा का मैदान अवश्य एक है। हिमालय से लेकर विन्ध्य की पथरीली भूमि के आरम्भ होने तक इस मैदान की चौड़ाई तो अधिक नहीं है, किन्तु लम्बाई अवश्य अधिक है। भागलपुर के आगे जिस स्थान से गंगा समुद्र से मिलने के लिये दक्षिण की ओर झुकती है, गंगा के मुहाने का उतना समभाग बंगाल देश के रूप में पृथक है ही, किन्तु शेष अंश के भी कदाचित् दो भाग किये जा सकते हैं। ये दो भाग आज कल संयुक्त-प्रान्त और बिहार के रूप में देख पड़ते हैं, यद्यपि इनकी सीमा वैज्ञानिक रीति से नहीं बटी है।

गंगा के मैदान के दक्षिण का विन्ध्य का भूमि-भाग प्राकृतिक दृष्टि से इस मैदान से भिन्न अवश्य है, किन्तु गंगा की घाटी के लोगों के लिये यह दुर्गम नहीं है। आगरा या प्रयाग से ग्वालियर, रीवाँ अथवा सागर या जबलपुर पहुँचना आजकल के वैज्ञानिक युग में ऐसा ही सरल है जैसे आगरे से प्रयाग पहुँचना। अतः विन्ध्य के इस भाग को गंगा की घाटी से पृथक् भिन्न देश समझना आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त यहाँ के लोग गंगा की घाटी के ही रहने वाले हैं। ये अभी कुछ ही दिनों से वहाँ जाकर बसे हैं। भाषा, रीति-रिवाज, धर्म्म तथा अन्य सब बातों में ये दोनों एक ही हैं। नर्मदा के दक्षिण का कुछ भाग तथा महानदी के आरम्भ की घाटी का कुछ भाग—छत्तीसगढ़ प्रदेश—अवश्य कुछ दूर पड़ता है, किन्तु क्योंकि यहाँ भी हिन्दी-भाषा-भाषी बस रहे हैं,

अतः इन प्रदेशों का भी साथ रहना आवश्यक है। क्या छत्तीसगढ़ के लोग निकट होने के कारण उड़ीसा या आन्ध्र लोगों के साथ रहना पसन्द करेंगे ?

राजस्थान का भूमि-भाग कुछ नहीं तो देशी राज्यों की शासन-प्रणाली की एकता के कारण ही कुछ भिन्न मालूम पड़ता है। गंगा की घाटी से यह प्राकृतिक रूप में भी भिन्न है। अरावली के उस पार मारवाड़ का देश तो बिलकुल ही पृथक् है। यद्यपि राजस्थान के लोग हमारे ही भाई-बन्धु हैं जो मुसलमानों के आक्रमण के समय में अपने पूर्वपुरुषों की भूमि, गंगा की घाटी को छोड़ कर वहाँ जा बसे थे, किन्तु कई सौ वर्षों से पृथक् रहने के कारण इनके रहनसहन, वेषभूषा, भाषा तथा सामाजिक और धार्मिक विचारों में बड़ा अन्तर हो गया है। शासन प्रणाली की विभिन्नता को तो ऊपर बताया ही जा चुका है, जिसके कारण और भी बहुत सी बातों में भेद हो जाया करता है। संयुक्तप्रान्त के किसानों की अवस्था सुधारने के प्रश्न को राजस्थानी भाई अपने देश में रहते हुये ठीक ठीक नहीं समझ सकते।

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

जैसा ऊपर दिखलाया जा चुका है भाषा, राज्य, हानि-लाभ तथा देश इन चार ऐक्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी हैं जो राष्ट्र के बनने में सहायक होती हैं। इनमें से धर्म्म के सम्बन्ध में हिन्दी-भाषा-भाषी प्रदेश में हिन्दू और मुसल्मान धर्म्मों का प्रश्न बड़ा जटिल है। धर्म्म का प्रभाव भिन्न-भिन्न धर्म्मानुयायी लोगों

की भाषा, राज्य तथा हानि-लाभ इत्यादि सभी बातों पर पड़ता है। अपने देश में हिन्दू मुसलमान दोनों के आदर्श इन सब बातों में थोड़े बहुत भिन्न तो हैं ही, ऊपर से स्वार्थी लोगों के प्रोत्साहन से इस पृथकता ने और भी स्पष्ट रूप धारण कर लिया है। इस भेद का बनावटी अंश तो निकाला जा सकता है किन्तु स्वाभाविक विभिन्नता का कुछ अंश अवश्य रह जायगा। इसका कोई उपाय नहीं, सिवा इसके कि ये दोनों धर्म्म एक हो जावें। यह बात संपूर्णतया असंभव नहीं है। एक समय हमारे सम्पूर्ण देश के लोग बौद्ध-धर्म्मावलम्बी हो गये थे, किन्तु अब तो बौद्ध आदमी ढूँढने पर भी कठिनाई से मिलता है। धर्म्म का ऐक्य राष्ट्र निर्माण के लिये नितान्त आवश्यक नहीं है, यद्यपि इसके होने से लाभ बहुत हैं।

हिन्दी-भाषा-भाषी एक वर्ग के हैं

वर्ग की एकता हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों में थोड़ी बहुत अवश्य पाई जाती है। गंगा की घाटी की जनता प्रायः एक ही से शरीर की बनावट की है यद्यपि पश्चिम से पूर्व की ओर धीरे धीरे अन्तर अवश्य होता गया है। योरपीय विद्वानों के अनुसन्धान के अनुसार 'हिन्दुस्तानी' आर्य-द्राविड़ वर्ग के हैं। राजस्थान के लोगों की गिनती आर्य्य वर्ग में की गई है। बिहार तथा वर्तमान मध्य प्रान्त में भी प्रायः आर्य्य-द्राविड़ वर्ग के ही लोग हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि इनमें क्रम से मंगोल तथा द्राविड़ अंश अधिक होता गया है।

राष्ट्रीय भावना को जगाना होगा

एक अन्तिम बात और है जो इन सब बातों की आत्मा है। यह है **लोगों में इस भाव का होना कि हम एक हैं।** इस भाव की नींव उपर्युक्त बातों पर ही निर्भर है। इन बातों के दृढ़ होने से इसकी भी पुष्टि होती है। किन्तु इस भाव के जाग्रत होने का मुख्य कारण राष्ट्र के लोगों का एक साथ सुख दुःख उठाना है। बंगाल में राष्ट्रीयता के लक्षण होने पर भी इस भाव की जनता में जाग्रति बंगभंग के आन्दोलन से हुई थी। अपने को एक समझने का यह भाव इस समय हिन्दी-भाषा-भाषियों में नहीं है। इस भाव को जाग्रत करने के लिये सब से प्रथम यह नितान्त आवश्यक है कि भाषा, राज्य, हानिलाभ तथा देश आदि की एकताओं को पुष्ट कर के इस भाव की नींव सुदृढ़ कर ली जाय। तभी अवसर मिलने पर इस भाव का प्रत्यक्ष दर्शन भी हो सकेगा।

तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक विभिन्नता तथा अन्य सब बातों को ध्यान में रखते हुये भारत के इस हिन्दी-भाषा-भाषी वृहत् मध्य भाग को अधिक से अधिक तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। राजस्थान एक प्रकार से पृथक् है ही। विहार भी बहुत समय से पृथक् रहा है। शेष गंगा की घाटी और दक्षिण के विन्ध्य का भाग, जिसमें हिन्दी-भाषा-भाषी लोग रहते हैं, हमारा हिन्दी राष्ट्र है। यह मानना पड़ेगा कि बंगाल, आन्ध्र, गुजरात तथा महाराष्ट्र आदि की तरह भाषा, राज्य, हानिलाभ तथा देश की एकता अभी

हिन्दीराष्ट्र में उतनी स्पष्ट नहीं है। यहां के लोग अपनी एकता को अभी अनुभव नहीं करते। इसका कारण यह है कि हम लोग बहुत समय से पददलित थे और अब भी भारत के अन्य लोगों से इतने पिछड़े हुए हैं कि अभी तक दूसरों के अधीन रहने में अपमान नहीं समझते। दूसरों के साथ में रहते रहते हमारा व्यक्तित्व नष्ट हो गया है। इस राष्ट्रीय व्यक्तित्व का फिर से उद्धार होना आवश्यक है।

---

४. सूबा हिन्दुस्तान

कांग्रेस द्वारा भारत को सूबों में विभक्त करने का सिद्धान्त

कांग्रेस महासभा ने भाषाओं की विभिन्नता के आधार पर भारत को प्रान्तों अथवा सूबों में विभक्त करने का यत्न किया है। एक भाषा बोलने वाले लोगों के एक शासन में होने से अनेक प्रकार की सुविधाएँ रहती हैं। इस प्रकार के स्वाभाविक विभाग प्रजा को शक्ति के विकास के लिए भी अत्यन्त हितकर होते हैं। भारत की अंग्रेजी सरकार का ध्यान इस ओर नहीं था। अब कुछ दिनों से लोगों की जाग्रति के कारण अंग्रेजी सरकार को भी इस ओर कुछ ध्यान देना पड़ रहा है। मद्रास प्रान्त में आन्ध्र लोग अलग होने का आन्दोलन कर रहे हैं। बिहार और उड़ीसा के अलग होने का प्रस्ताव भी उठ रहा है। इधर सिंध और कर्नाटक भी कुछ चेत रहे हैं। जो हो, महासभा ने भाषा के अनुसार सूबों के विभाग करने के सिद्धान्त को मान लिया है। महासभा के सूबे इसी सिद्धान्त को ध्यान में रख कर किये गये हैं, अतः ये विभाग भारत के वर्तमान प्रान्तों की अपेक्षा कहीं अधिक संतोषजनक माने जाते हैं।

दक्षिण भारत के चार द्राविड़ सूबे—तामिल, आन्ध्र, केरल तथा कर्नाटक—पूर्ण रूप से स्वाभाविक हैं। वर्तमान मद्रास प्रान्त

के साथ इनको मिलाने से इस नये सिद्धान्त के अनुसार विभाग करने के लाभ विदित होते हैं। इन नये विभागों से उन सूबों की प्रजा भी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट है। आन्ध्र और उड़ीसा की सीमा पर कुछ आपस का झगड़ा था, लेकिन वह भी अब निपट गया है। भारत के पूर्व के उड़ीसा, बंगाल तथा आसाम के सूबे भी ठीक हैं। दो एक जिलों के इधर उधर करने की आवश्यकता कदाचित् पड़े, और यह कभी भी हो सकता है। पश्चिम भारत के महाराष्ट्र, गुजरात, सिन्ध तथा पंजाब के सूबों के सम्बन्ध में भी कुछ विशेष परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। बम्बई नगर का सूबा उसकी विशेष स्थिति के कारण अलग माना जा सकता है, परन्तु मराठी मध्यप्रान्त तथा बरार के पृथक् सूबे रखना ठीक नहीं है। इन सूबों की भाषा मराठी है, अतः इनका महाराष्ट्र के साथ रहना स्वाभाविक है। इनके अलग सूबे रखने में कदाचित् वर्तमान प्रान्तीय विभागों का प्रभाव ही मुख्य कारण है।

हिन्दी-भाषा-भाषियों के संबंध में यह सिद्धान्त भुला दिया गया

तो भी यहाँ तक के भारत के विभाग प्रायः सन्तोषजनक हैं। केवल थोड़े से मोटे मोटे हेर फेर करने की आवश्यकता होगी, जो बड़ी आसानी से किये जा सकेंगे। किन्तु भारत के शेष हिन्दी भाषाभाषी मध्यभाग के सूबों के विभाग महासभा ने भी बड़ी अस्वाभाविक रीति से किये हैं। अब तक भाषा के सिद्धान्त को मानते

हुए यहाँ आकर न मालूम उसे एक साथ क्यों भुला दिया गया। मुख्य कारण वर्तमान प्रान्तों का प्रभाव मालूम होता है। इसके अतिरिक्त एक अन्य विशेष कारण भी है। भारत के इस मध्य भाग की जनता बंगाल अथवा आन्ध्र के लोगों की तरह अपनी एकता को—जो कम से कम ठीक ठीक पृथक् सूबों के रूप में इकट्ठे होने में तो प्रकट होनी ही चाहिए—तनिक भी अनुभव नहीं करती। कहावत है, बिना रोये माता भी बच्चे को दूध नहीं पिलाती, फिर शुष्कहृदय राजनीतिज्ञों से क्या आशा की जा सकती है? सम्भव है कि इन विभागों के करने वालों का, भारत के इस मध्य भाग के सम्बन्ध में अल्प ज्ञान भी इस गड़बड़ी का कारण हो। जो हो, फल यह हुआ है कि संयुक्त प्रान्त, हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त, बिहार, दिल्ली तथा अजमेर के सूबों की भाषा कांग्रेस के रजिस्टर में एक—हिंदुस्तानी—लिखी होने पर भी ये पांच सूबे अलग अलग रक्खे गये हैं और इनके विभाग भी बिना किसी स्वाभाविक नियम के किये गये हैं। भारत के इस हिंदुस्तानी भाषाभाषी मध्यभाग को स्वाभाविक रीति से सूबों में किस प्रकार विभक्त किया जा सकता है, जिससे यहाँ की जनता भी बंगाल, आन्ध्र, गुजरात तथा महाराष्ट्र आदि के लोगों की तरह अपनी स्वतन्त्र स्थिति को अनुभव करते हुये भावी संयुक्तभारत के बनाने में सहायक हो सके—इस समय इसी सम्बन्ध में कुछ विस्तार से विचार करना है।

प्रान्तीय विभाग के सम्बन्ध में हिन्दी-भाषा-भाषियों का आदर्श

यदि केवल भाषा ही सूबों के इन विभागों के करने की कसौटी हो, तो भारत का यह सम्पूर्ण मध्यभाग एक सूबा होना चाहिए क्योंकि इसकी भाषा एक—हिन्दुस्तानी—है। इस प्रस्ताव के विरुद्ध केवल एक बात कही जा सकती है और वह यह कि भारत का यह सूबा बहुत बड़ा हो जायगा—इसका प्रबन्ध करना दुस्तर होगा। किन्तु इस युक्ति को देकर, महासभा अथवा अन्य सूबों को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं हो सकता। यदि महासभा भाषा के अनुसार सूबों के विभागों के सिद्धान्त को मानती है—उसका ऐसा मानना ठीक भी है—और यदि ये सब हिन्दुस्तानी बोलनेवाले लोग एक सूबे में रहना चाहते हैं, तो कोई कारण नहीं कि शासन की कठिनाई का बहाना करके इन हिन्दुस्तानी बोलनेवाले लोगों को कई भागों में विभक्त कर दिया जाय। यह तो ठीक वैसी ही युक्ति होगी, जैसी बंगाल के दो टुकड़े करने के लिये भारत की अंग्रेजी सरकार देती थी। यदि किसी का परिवार बहुत बड़ा हो, परन्तु उसके सब लोग एक साथ रहना चाहते हों, तो दूसरे छोटे छोटे परिवारों का यह कह कर उस बड़े परिवार को ज़बर्दस्ती विभक्त करना, कि तुम्हें अपना प्रबन्ध करने में कठिनाई पड़ेगी इस लिये तुम भी हमारी तरह छोटे छोटे घर बना लो, कहाँ तक न्याय-सङ्गत होगा! इस संबंध

में एक बात मुख्य है–उस बड़े परिवार के लोगों की एक में रहने की इच्छा तथा शक्ति। यह सच है कि भारत का यह मध्य का सूबा भारत के अन्य सूबों से क्षेत्रफल तथा जनसंख्या दोनों में सब से बड़ा होगा। कदाचित् संसार में इसकी टक्कर का कोई भी राष्ट्र न निकले, किन्तु किसी का बड़ा होना उसके भिन्न छिन्न किये जाने का कारण नहीं होना चाहिए। महासभा जब एक भाषा-भाषी होने के कारण ४½ करोड़ जनसंख्या का बंगाल का सूबा तथा साथ ही कुछ लाख प्राणियों का केरल का सूबा रख सकती है, तो उसे प्रायः १० करोड़ के इस सूबे के रखने में भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वास्तव में यह हिन्दुस्तानी भाषा बोलनेवालों की इच्छा तथा शक्ति पर ही अवलम्बित है। इन दोनों के होने पर महासभा क्या, संसार की कोई भी शक्ति इन्हें अलग नहीं कर सकती।

अन्य छोटे छोटे सूबों को एक बात अवश्य खटकने वाली हो सकती है। उन्हें यह भय हो सकता है कि इतने विशाल सूबे के होने से इसके प्रतिनिधियों की संख्या महासभा में इतनी अधिक हो जावेगी कि यह अकेला ही जो चाहे सो करा सकेगा। यह युक्ति भी ठीक नहीं है। वर्तमान अवस्था में भी केरल, अजमेर तथा दिल्ली जैसे छोटे छोटे सूबों की स्थिति बंगाल, महाराष्ट्र अथवा पंजाब के आगे ठीक वैसी ही है, जैसी इस बड़े सूबे के हो जाने से आज कल के इन बड़े सूबों की हो सकती है। यह बात तो आपस के विश्वास पर छोड़नी पड़ेगी। यदि ऐसा ही

भय है तो फिर भाषाओं के आधार पर स्वाभाविक प्रान्तिक विभाग करने का प्रश्न उठाना ही व्यर्थ है ! एक एक या दो दो करोड़ की जनसंख्या के एक से सब सूबे बना देने चाहिए। यही इस भय को मिटाने का एक-मात्र उपाय है। भारत को एक राष्ट्र मानने वाले लोगों को इस में कोई आपत्ति भी नहीं होनी चाहिए। परन्तु बंगभंग के आन्दोलन की बीसियों नयी आवृत्तियों को देखने की इच्छा क्या अपनी महासभा को होगी ?

सब से पहिले इस सम्बन्ध में हम हिन्दी-भाषा-भाषियों को आपस में भली प्रकार विचार कर लेना चाहिए, तब इस प्रस्ताव को बाहर रखना उचित होगा। इस बड़े सूबे में वर्त्तमान निम्न-लिखित प्रान्त सम्मिलित होंगे—संयुक्त प्रान्त, हिन्दुस्तानी मध्य प्रान्त, उड़ीसा को छोड़ कर शेष बिहार, दिल्ली, पंजाब में अम्बाले तक का सरहिन्द का भाग जिसकी भाषा हिन्दुस्तानी है, अजमेर, मध्य भारत के देशी राज्य तथा राजपूताना। इस अवस्था में इस बड़े सूबे का क्षेत्रफल प्रायः ४ लाख वर्ग मील होगा और जनसंख्या प्रायः १० करोड़ हो जावेगी। इस सूबे के शासन में कुछ विशेषता होगी। प्रायः आधा सूबा देशी राजाओं के शासन में होगा और शेष अंग्रेजी शासन में होगा; परन्तु इस कारण से कोई कठिनाई नहीं पड़नी चाहिए। जर्मन साम्राज्य में कई छोटे राज्य थे, किन्तु इस कारण वहाँ के शासन में कोई भारी बाधा कभी नहीं पड़ी। जिस प्रकार आज कल के प्रान्तों में कुछ देशी राज्य सम्मिलित हैं, उदाहरण के लिए

संयुक्त प्रान्त में बनारस, रामपुर और गढ़वाल के राज्य, उसी प्रकार इस बड़े सूबे में मध्यभारत और राजपूताने के राज्य भी रह सकते हैं। महासभा की वर्तमान नीति देशीराज्यों के विषय में उदासीन रहने की है, अतः इस समय राजपूताना तथा मध्य भारत के राज्यों को छोड़ा जा सकता है, किन्तु यह सदा न हो सकेगा। एक भाषा बोलनेवाले लोग, चाहे वे इस समय अंग्रेज़ी शासन में हों या देशी राज्यों में, भविष्य में पृथक् नहीं रह सकते। इसी कारण इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए देशी राज्यों को भी सम्मिलित कर लिया है।

इतने विशाल सूबे के होने से उसको ठीक ठीक प्रदेशों में विभक्त करने का प्रश्न अत्यन्त महत्व का है। जब भाषाओं के आधार पर सूबों का संगठन किया गया है, तब बोलियों के स्वाभाविक विभागों को ध्यान में रखते हुए प्रदेशों की रचना करना अत्यन्त युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है। 'भाषासर्वे' के अनुसार इस भूमि-भाग में निम्नलिखित सोलह मुख्य बोलियाँ बोली जाती हैं—खड़ीबोली, बांगड़ू, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, मालवी, जयपुरी, मारवाड़ी, गढ़वाली और कमायूनी, अतः इस बड़े सूबे को इन सोलह प्रदेशों में बड़ी सुगमता से विभक्त किया जा सकता है। इस काम में कुछ अत्यन्त प्राचीन ऐतिहासिक स्मृति भी छिपी हुई है, जो इस प्रकार के विभाग को और भी सार्थक तथा मधुर बना देती है। इन वर्तमान बोलियों के भूमि-भागों और यहाँ के प्राचीन

जनपदों में बड़ा भारी सादृश्य* है। ऐसा मालूम पड़ता है कि प्रत्येक बोली का प्रदेश एक एक जनपद का प्रतिनिधि-रूप हो। बोलियोंके ये विभाग क्रम से निम्नलिखित जनपदों का स्मरण कराते हैं—कुरु, कुरुजांगल, शूरसेन, पञ्चाल, चेदि, कोसल, वत्स, महा-कोसल, काशी, मिथिला, मगध, अवन्ति, वत्स्य और मरुदेश। गढ़वाल और कमायूँ में कोई प्राचीन प्रसिद्ध जनपद नहीं थे। बोलियों के आधार पर इस बड़े सूबे के प्रदेशों की रचना करने के लिए यह प्राचीन जनपदों के साथ सादृश्य क्या एक बड़े आकर्षण का कारण नहीं है?

सूबे के इन प्रदेशों को कई प्रान्तों के रूप में अलग अलग इकट्ठा किया जा सकता है और इन प्रान्तों के वर्तमान नाम रहने दिये जा सकते हैं। जैसे मैथिली और मगही बोलियों के प्रदेशों का एक प्रान्त बिहार नाम से रह सकता है। इसी प्रकार संयुक्त प्रान्त, मध्यप्रान्त तथा राजस्थान प्रान्त रह सकते हैं। सूबे के अन्दर इस तरह के प्रान्तों के रखने का प्रश्न शासन की सुविधा के लिए उठाया जा सकता है, किन्तु इस से भारी हानि यह हो सकती है कि इस प्रान्तिक भाव के बलिष्ठ हो जाने से सूबे की एकता में बाधा पड़ने का भय रहेगा। अमेरिका के संयुक्त राज्य की तरह प्राचीन जनपदों के नये रूप अर्थात् बोलियों

* इस सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन के लिए नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, भाग ३, अंक ४ में "हिन्दुस्तान की वर्तमान बोलियां और उनका प्राचीन जनपदों से सादृश्य" शीर्षक मेरा लेख देखिये। लेखक

के प्रदेशों और वर्तमान देशी राज्यों का एक सूबे के रूप में संगठन बड़ा सुन्दर हो सकता है। वर्तमान ज़िलों और प्रान्त के बीच में कमिश्नरियों की तरह इन प्रान्तों की रचना करना व्यर्थ है, कदाचित् हानिकर भी हो।

हिन्दी-भाषा-भाषियों को व्यवहारिक ढंग से सूबों में बांटना

सम्भव है इतना विशाल कार्य हाथ में लेने का साहस लोगों में न हो, अथवा इस सम्बन्ध में एकमत न हो। यदि भाई भाई अलग अलग घर करना चाहें, तो इसमें ज़बरदस्ती करना बेकार है। आपस में समझौते से बटवारा कर लेना लड़ कर जुदा होने से कहीं अच्छा है। यदि इस बड़े सूबे को यहाँ के लोगों की इच्छा के कारण कई सूबों में विभक्त करना ही पड़े, तो इसमें भी भाषा ही का आधार रखना उचित होगा। यह सदा ध्यान में रखना चाहिए कि इस सम्बन्ध में कांग्रेस का भी सिद्धान्त यही है। भाषासर्वे में दिये हुए भाषाओं के वैज्ञानिक पृथक्करण के अनुसार भारत के इस मध्य भाग की बोलियाँ तीन मुख्य भाषाओं में विभक्त की गयी हैं। भोजपुरी, मैथिली और मगही बोलियों को बिहारी भाषा का नाम दिया गया है। मालवी, जयपुरी तथा मारवाड़ी बोलियों को राजस्थानी भाषा के नाम से गिना है। शेष आठ बोलियों को हिन्दी भाषा माना है। ऊपर बतलाया जा चुका है कि हिन्दी के भी पूर्वी और पश्चिमी दो भाग किये गये हैं। पश्चिमी हिन्दी में बांगड़ू, खड़ीबोली, कन्नौजी, ब्रजभाषा और

बुन्देली बोलियों, और पूर्वी में अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी बोलियों की गिनती की गई है।

भारत के मध्यभाग की भाषाओं के इस वैज्ञानिक विभाग के आधार पर बिहार और राजस्थान के दो पृथक् सूबे होने चाहिए। बिहार का पृथक् सूबा आजकल भारत-सरकार तथा महासभा दोनों ने मान रक्खा है। मुसलमान-काल में भी बिहार का सूबा प्रायः अलग रहा है। मौर्य तथा गुप्त साम्राज्य भी वास्तव में बिहार के लोगों के साम्राज्य थे। वैदिक धर्म के कलुषित तथा क्षीण हो जाने पर इसी भूमि से बुद्ध भगवान ने सनातन धर्म में प्रथम बार व्यापक सुधार करने का प्रयत्न आरम्भ किया था। अतः बिहार के सूबे के अलग करने में ऐतिहासिक क्रम भी समर्थक है। भाषाशास्त्र के सूक्ष्म भेदों को छोड़ कर शेष बातों में ग्रियर्सन महोदय ने भोजपुरी लोगों की गणना हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों के साथ की है। इस समय भी भोजपुरी भूमिभाग संयुक्त-प्रान्त में है अतः इस भूमि-भाग के बिहार में जाने का प्रश्न तब तक उठाना उचित न होगा जब तक इस भूमि-भाग की जनता ही इसके लिये उत्सुक न हो। उड़ीसा को वर्तमान बिहार-सूबे से अवश्य अलग कर देना चाहिये। महासभा ने तो ऐसा मान ही रक्खा है।

राजस्थान के सूबे में प्रायः सम्पूर्ण वर्तमान राजपूताना आ जायगा। इसके अतिरिक्त मध्य-भारत का इन्दौर राज्य अर्थात् मालवा का प्रदेश भी इसमें मिलाना चाहिये क्योंकि यहाँ की

मालवी बोली राजस्थानी भाषा में आती है। यहाँ के लोग भी राजस्थानियों से अधिक मेल खाते हैं। इस सूबे की विशेषता इसकी राजतन्त्र शासन-प्रणाली होगी। वर्तमान समय में भी राजपूताना अलग है। अजमेर को केन्द्र बना कर भविष्य में राजस्थान का एक पृथक् सूबा 'संयुक्त-भारत' में बहुत अच्छी तरह बन सकता है। निकट भूतकाल में भारत के क्षत्रियत्व की लाज हमारे इन्हीं राजपूत भाइयों ने रक्खी थी, अतः एक सूबे के रूप में इनका एक पृथक् संघ होना उचित ही है। सूबा राजस्थान मध्यकालीन हिन्दू-भारत की कुछ कुछ याद दिलाने का काम देगा।

सूबा हिन्दुस्तान

वैज्ञानिक पृथक्करण के अनुसार पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी दो भिन्न भाषाएँ मानी गयी हैं। ग्रियर्सन साहब के मत में तो पूर्वीहिन्दी, पश्चिमीहिन्दी की अपेक्षा, बिहारी के अधिक निकट है। इसी प्रकार पश्चिमीहिन्दी, पूर्वीहिन्दी की अपेक्षा, पञ्जाबी के अधिक निकट है। इतनी विभिन्नता मानने पर भी सर्वे में अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी बोली को पश्चिमी-बिहारी भाषा कहने के स्थान पर पूर्वी-हिन्दी-भाषा कहना ही उचित समझा गया, यह आश्चर्य है। इससे तो यही विदित होता है कि इन बोलियों में बिहारीपन व्याकरण के कुछ सूक्ष्म भेदों में भले ही हो, किन्तु वैसे अन्य सब बातों में ये पश्चिमी हिन्दी की बोलियों से ही मिलती हैं। बात भी ऐसी ही है। क्या आगरे में रहनेवाले

आदमी के लिये तुलसीदास जो के रामचरितमानस की अपेक्षा ग्रन्थसाहब अधिक निकट हो सकता है, अथवा अयोध्या के लोगों को सूरदास और केशवदास के ललित ग्रन्थों की अपेक्षा विद्यापति ठाकुर की पदावली अधिक समझ में आवेगी ? हिन्दी-भाषा को इन पूर्वी और पश्चिमी बोलियों में इतनी अधिक समता है कि राष्ट्रीय दृष्टि से ये पृथक् नहीं मानी जा सकतीं। बंगाल की तरह हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों के पूर्वी और पश्चिमी दो विभाग करना एक शरीर के दो टुकड़े करना होगा। अतः उचित यही है कि हिन्दी भाषा के अन्तर्गत गिनी जाने वाली खड़ीबोली बाँगड़ू, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली, अवधी, बाघेली, छत्तीसगढ़ी तथा भोजपुरी इन नौ बोलियों के प्रदेशों का एक सूबा बने। इस सूबे को भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी है, अतः इसका नाम सूबा हिन्द या हिन्दुस्तान होना चाहिये। यहाँ के लोग हिन्दी या हिन्दुस्तानी कहलावेंगे। आगे हम इसके लिये सूबा हिन्दुस्तान नाम का प्रयोग करेंगे।

इस सूबा हिन्दुस्तान में वर्तमान निम्नलिखित प्रान्त होंगे :— संयुक्त प्रान्त, मध्यप्रान्त के चौदह हिन्दुस्तानी ज़िले, देहली का छोटा प्रान्त, पंजाब में यमुना और सतजल के बीच के अम्बाला, कर्नाल हांसी, हिसार और रोहतक के पाँच ज़िले जिनकी बोली हिन्दी है पंजाबी नहीं, इन्दौर को छोड़कर मध्यभारत के शेष रीवाँ, पन्ना तथा ग्वालियर आदि देशी राज्य, राजपूताना के भरतपुर, धौलपुर, करौली और अलवर के राज्य

जिनकी भाषा राजस्थानी नहीं है। चम्पारन, सारन और शाहाबाद के तीन भोजपुरी ज़िले भी, जो इस समय बिहार प्रान्त में हैं, इस ओर आ जाने चाहिए। संपूर्ण भोजपुरी लोगों का एक ही सूबे में रहना उचित प्रतीत होता है। कमायूँ तथा गढ़वाल के लोग अपनी इच्छानुसार इस सूबा हिन्दुस्तान में रह सकते हैं। यह याद रखना चाहिये कि कमायूँ और गढ़वाल ने हिन्दी को ही अपनी साहित्यिक भाषा के रूप में अपना रक्खा है। इस समय भी वे संयुक्तप्रान्त के साथ हैं।

जो हो, वर्तमान हिन्दुस्तानी-मध्य-प्रान्त तथा आगरा और अवध के संयुक्त प्रान्तों का त्रिवेणी-संगम हिन्दुस्तानी लोगों के मोक्ष का एकमात्र उपाय है। सूबा हिन्दुस्तान बनाने के लिये इन तीनों का पूर्ण रूप से एक हो जाना नितान्त आवश्यक है। वास्तव में यह तीनों हैं भी एक। देहली तो अपनी है ही, इसके सिवाय यमुना पार सरस्वती नदी तक का सरहिन्द का भूमि-भाग भी अपना ही है। 'हिन्द' का 'सर' धड़ से अलग नहीं देखा जा सकता। पंजाब प्रान्त को यह भूमि-भाग हमें देने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि यहाँ पंजाबी लोग अधिक संख्या में नहीं बसते। असली पंजाब तो सतलज तक है। इन्दौर को छोड़ कर मध्यभारत के शेष देशी-राज्य अपने सूबे में पड़ेंगे। राजपूताना से भरतपुर आदि राज्यों को राजस्थान-संघ से अलग होने में कुछ आपत्ति हो सकती है।

परन्तु इन गौण प्रश्नों पर अभी अधिक विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

यह सूबा हिन्दुस्तान प्राचीन काल के "मध्यदेश"* नाम के प्रसिद्ध भूमि-भाग के प्रायः बिलकुल बराबर होगा।

इस सूबे का क्षेत्र-फल २ लाख वर्ग मील से कम तथा जन-संख्या प्रायः ५ करोड़ होगी। इस अवस्था में इस सूबे के बहुत बड़े होने का बहाना भी नहीं हो सकता है। शासन की सुविधा के लिए बोलियों के आधार पर इस सूबे को प्रदेशों में विभक्त करना तो आवश्यक तथा उचित ही होगा। साथ ही इन प्रदेशों को प्रान्तों में विभक्त करने का प्रश्न भी उठ सकता है। भोजपुरी भूमिभाग और अवध का एक पूर्वी प्रान्त बनाया जा सकता है। कन्नौजी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली तथा बांगड़ू बोलियों के प्रदेशों का एक पश्चिमी प्रान्त बन सकता है। तथा यमुना के दक्षिण में बुन्देल-खण्ड, बघेलखण्ड, और छत्तीसगढ़, दक्षिण प्रान्त के नाम से एक जगह हो सकते हैं। किन्तु सूबा हिन्दुस्तान में इस प्रकार के प्रान्त बनाना अनावश्यक है इस से सूबे की एकता में बाधा पड़ने की सम्भावना हो सकती है।

---

* प्राचीन मध्यदेश के सम्बन्ध में विशेष रूप से जानने के लिए नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका भाग ३ अंक १ में "मध्य-देश का विकास" शीर्षक मेरा लेख देखिये।

—लेखक

सूबा हिन्दुस्तान के टुकड़े करना आत्मघात करने के बराबर होगा

अंग्रेज़ी सरकार द्वारा केवल संयोगवश किये गये वर्तमान प्रान्तों के झूठे मोह में फँस कर एक तीसरा प्रस्ताव यह भी हो सकता है कि भावी सूबा हिन्दुस्तान के ये तीन प्रान्त क्यों न पृथक् पृथक् सूबे मान लिये जायँ। सम्भव है, आजकल बहुत से लोगों को यह प्रस्ताव रुचिकर हो। इस क्रम के अनुसार संयुक्त-प्रान्त को तोड़कर उसके दो पृथक् सूबे बनाने होंगे। अवध और काशी का पूर्वी-प्रान्त सूबा अवध या अन्य किसी नाम से प्रसिद्ध किया जा सकता है, तथा शेष आगरा प्रान्त और देहली तथा सरहिन्द को मिला कर बनाये हुये पश्चिमी प्रान्त को सूबा आगरा या देहली का नाम दिया जा सकता है। हिन्दुस्तानी मध्य-प्रान्त, मध्यभारत के रीवाँ आदि के देशी राज्य, तथा यमुना के दक्षिण के संयुक्त प्रान्त के ज़िलों को मिलाकर एक तीसरा सूबा महाकोशल, मध्यप्रान्त, सूबा मध्यभारत, या किसी अन्य नाम से बनाया जा सकता है। अपने मूल हिन्दुस्तानी लोगों को इस प्रकार से सूबों में विभक्त करने में सब से बड़ी बाधा तो यह होगी कि यह क्रम भाषा के आधार पर न होने के कारण अस्वाभाविक और काँग्रेस के सिद्धान्त के विरुद्ध होगा। दूसरे, इनमें कोई ऐसा ऐतिहासिक क्रम भी न होगा जिससे लोग अपने सूबों की प्राचीनता पर गर्व कर सकें और उसके कारण गौरव का अनुभव करें। तीसरे, एक ही भाषा-भाषी लोगों के विभक्त हो जाने से

इनको शक्ति का भारी अपव्यय तथा ह्रास होगा। व्यर्थ ही तीन शासन के स्वतन्त्रकेन्द्र, तीन प्रान्तीय कौंसिलें तथा तीन साहित्य-सम्मेलन आदि बनाने होंगे। इस अवस्था में हम लोगों की शक्ति भारत के अन्य सूबों से बहुत कम हो जावेगी। अभी ही हम लोग बहुत पीछे हैं। इन सब के अतिरिक्त न इन सूबों के ठीक नाम हो सकेंगे और न लोगों के कुछ नाम पड़ सकेंगे। सूबे, भाषा तथा लोगों के नामों का सुन्दर एकीकरण जो बंगाल-बंगाली, गुजरात-गुजराती तथा पंजाब-पंजाबी इत्यादि में मिलता है क्या आगरा-आगरी अथवा मध्यप्रान्त-मध्यप्रान्ती में मिल सकेगा? सूबा हिन्दुस्तान को इस तरह आगरा, अवध और मध्यभारत आदि नामों से अनेक पृथक् सूबों में विभक्त करने में हानि के सिवाय लाभ कुछ भी नहीं देख पड़ता। यत्न तो यह होना चाहिए कि बिहार, राजस्थान और हिन्दुस्तान तीनों का एक ही सूबा रहे। ऐसा न करके अपने ही को छिन्न-भिन्न कर डालना आत्मघात करने के बराबर होगा।

हिन्दी भाषा-भाषियों के सोलह प्रान्त

भारत के इस संपूर्ण मध्यभाग का एक और रीति से भी सूबों में विभाग हो सकता है। वह यह कि इसकी सोलह बोलियों के प्रदेश सोलह स्वतन्त्र सूबे हो जावें। बंगाल, महाराष्ट्र तथा पंजाब आदि सूबों की तरह इन सोलहों का भारत सरकार से सीधा सम्बन्ध रहे। सूबा हिन्दुस्तान के तीन पृथक् सूबे करने में जो हानियाँ ऊपर बतलायी गयी हैं, वे यहाँ और भी स्पष्ट रूप से लागू होंगी।

सवा करोड़ का अवध का सूबा या ३७ लाख का छत्तीसगढ़ का सूबा अलग हो सकता है, लेकिन साथ ही साढ़े चार करोड़ से अधिक सूबा बंगाल और प्रायः दो करोड़ के महाराष्ट्र को भी भूलना नहीं चाहिए। घर में ज़बर्दस्ती की दीवारें खड़ी करने से लाभ ही क्या? यद्यपि प्राचीन जनपदों के अनुसार शासन के स्वाभाविक विभाग यही होंगे, किन्तु साथ ही वर्तमान नवीन परिस्थिति तथा इस कारण से उत्पन्न अपने हानि-लाभ पर की दृष्टि रखनी चाहिए। फिर यह विभाग भाषा के अनुसार भी तो न होंगे। क्या जबलपुर और कानपुर के लोग भिन्न-भिन्न भाषाओं में अपना कार्य करेंगे? कदापि नहीं।

भारत के इस वृहत् मध्यभाग के इन चारों प्रकार के विभागों की रीति पर ध्यान देते हुए सब से उत्तम तो यही मालूम होता है कि इसके तीन पृथक् सूबे बिहार, हिन्दुस्तान तथा राजस्थान के नाम से रहें। इन तीनों सूबों की व्यवहार की भाषा एक हिन्दुस्तानी होने के कारण, भारत के अन्य सूबों की अपेक्षा, इनका आपस में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रहेगा। एक प्रकार से यह आवश्यकता के कारण किये गए एक ही बड़े घर के तीन टुकड़े होंगे। इनमें बीच का, भारत का हृदय, सूबा हिन्दुस्तान होगा जहाँ की भाषा और लोग भारत तथा संसार में 'हिन्दुस्तानी' के नाम से प्रसिद्ध हो सकते हैं।

---

५. हिन्दीराष्ट्र को दृढ़ तथा स्थायी बनाने के उपाय

हिन्दीराष्ट्र और संयुक्त-प्रान्त

राष्ट्र के लक्षणों के आधार पर पिछले अध्यायों में यह सिद्ध करने का यत्न किया गया है कि भारत एक राष्ट्र नहीं है बल्कि राष्ट्र-संघ है जिसमें आसाम, बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र, तामिल, केरल, कर्नाटक, गुजरात, सिन्ध, पंजाब, महाराष्ट्र आदि अनेक राष्ट्र सम्मिलित हैं। वास्तव में भारतवर्ष की तुलना समस्त यूरोप उपद्वीप से करनी चाहिये, यूरोप के देशों से नहीं। भारत के मध्य भाग में हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों का देश एक राष्ट्र माना जा सकता है। व्यवहारिक दृष्टि से इसके तीन उप-विभाग किये जा सकते हैं अर्थात् राजस्थान, बिहार और हिन्दुस्तान। हिन्दी-भाषा-भाषियों का केन्द्र हिन्दुस्तान है जिसका अधिक भाग इस समय भी वर्तमान संयुक्त-प्रान्त के रूप में उपस्थित है। इस अध्याय में हम हिन्दी राष्ट्र के इस केन्द्र को दृढ़ तथा स्थायी बनाने के उपायों का दिग्दर्शन कराने का यत्न करेंगे। वास्तव में संयुक्त-प्रान्त ही इस समय भावी सूबा हिन्दुस्तान तथा हिन्दी राष्ट्र का प्रतिनिधि स्वरूप है।

संयुक्त-प्रान्त के नामकरण की आवश्यकता

सबसे प्रथम आवश्यकता अपने देश अथवा वर्तमान संयुक्त-प्रान्त को उचित नाम देने की है। भारतवर्ष में केवल यह एक हिन्दी-भाषा-भाषी जन-समुदाय ही ऐसा अभागा है कि न तो जिसके देश का ही कोई नाम है और न जहाँ के देशवासियों को ही किसी एक नाम से पुकारा जा सकता है। यदि आप किसी कलकत्ते के रहने वाले से पूछिये तो वह बड़े गर्व से कहेगा कि मैं बंगाल का रहने वाला हूँ। अहमदाबाद का रहने वाला अपने को गुजराती बतला देगा। अमृतसर का रहने वाला अपने को पंजाबी समझता है। पूना वालों का देश महाराष्ट्र है। किन्तु काशी, अयोध्या, प्रयाग, लखनऊ, आगरा, मेरठ तथा दिल्ली के रहने वाले जानते ही नहीं कि वे कहाँ के रहने वाले हैं। उनके देश का नाम यदि कोई है तो वह है "संयुक्त-प्रान्त" अथवा "मुमालिक मुतहद्दा आगरा व अवध"। अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे अपने को "यू० पी० मैन" समझते हैं। बंगाल में हमारे प्रान्त को "अप-कन्ट्री" के नाम से पुकारा जाता है। हमारा राष्ट्र किस अवस्था में है तथा भारत के अन्य राष्ट्र अभी भी हम से कितने आगे हैं इसका पता इसी एक छोटी सी बात से चल जाता है। बिना नाम का आदमी भला अपना परिचय कैसे दे सकता है।

हमारे प्रान्त के नाम का यह स्वांग अब बन्द हो जाय इस सम्बन्ध में तुरन्त प्रयत्न होना चाहिये। हिन्दी-भाषा-भाषियों को चाहिये कि "संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध" के स्थान पर

अपने प्रान्त का कोई सीधा तथा सर्वप्रिय नाम रखवावें। मेरे विचार में हमारे प्रान्त का सब से अधिक उपयुक्त नाम "हिन्दुस्तान" होगा। देश, देश वासी, तथा भाषा का जितना सुन्दर साम्य इस नाम से हो सकेगा उतना और किसी नाम से संभव नहीं मालूम होता—देश का नाम हिन्दुस्तान, देश वासी हिन्दुस्तानी, भाषा हिन्दुस्तानी। यहां यह स्मरण दिलाना अनुचित न होगा कि संयुक्त प्रान्त के लोग भारत के अन्य प्रान्तों में अब भी कभी कभी हिन्दुस्तानी के नाम से पुकारे जाते हैं। हमारे प्रान्त की भाषा के लिए भी हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग थोड़ा बहुत होता है। प्रान्त के लिये यह नाम कुछ नया अवश्य प्रतीत होता है किन्तु इतिहास के विद्वान जानते हैं कि हिन्दुस्तान नाम का प्रयोग आरम्भ में गंगा की घाटी के पश्चिमोत्तर भाग के लिये ही हुआ करता था। धीरे धीरे उत्तर भारत तथा अन्त में संपूर्ण भारतवर्ष के लिये इसका प्रयोग कुछ दिनों से होने लगा है। अभी भी हिन्दुस्तान शब्द का व्यवहार भारतवर्ष से हटाकर फिर अपने पुराने सच्चे अर्थ में प्रचलित किया जा सकता है। भारतवर्ष के लिये 'भारत' से अधिक उपयुक्त नाम और कोई हो ही नहीं सकता। विदेशों में लोग भारतवासियों के लिये "इंडियन" अथवा "हिन्दू" शब्द का प्रयोग करते हैं।

प्रान्तीय सीमाओं का निर्धारण

दूसरी मुख्य आवश्यकता इस सूबा हिन्दुस्तान की सीमाओं को ठीक ठीक निर्धारित करने की है। ऊपर दिखलाया जा चुका है

कि समस्त हिन्दी-भाषा-भाषियों को एक प्रान्त के रूप में संगठित करना व्यवहारिक नहीं है। बिहार और राजस्थान के पृथक् सूबे रहने में कोई विशेष क्षति भी नहीं है किन्तु वर्तमान संयुक्त प्रान्त के टुकड़े होना किसी अवस्था में भी नहीं सोचा जा सकता। कभी कभी कुछ छोटे छोटे स्वार्थों के कारण आगरा और अवध को अलग करने की चर्चा सुनाई पड़ने लगती है और कुछ बातों में इसका आरम्भ भी हो गया है। वास्तव में आगरा और अवध के भाव को बिलकुल मिटा देने की आवश्यकता है। हिन्दी-भाषा-भाषियों का कल्याण इसी में है कि बंगाल की तरह सूबा हिन्दुस्तान के भी पूर्वी और पश्चिमी टुकड़े न हों। प्रान्त का नाम बदल जाने से इसमें बहुत सहायता मिलेगी। दिल्ली से काशी तक का देश बिलकुल एक है। दिल्ली के नन्हे से प्रान्त के साथ संयुक्त प्रान्त के कुछ पश्चिमी जिलों को मिला देने की चर्चा भी कभी कभी सुन पड़ती है। राष्ट्रीयता की दृष्टि से यह भी अत्यन्त हानिकर होगा। दिल्ली नगर वास्तव में हिन्दुस्तान का नगर है। जैसे बंगाल प्रान्त में कलकत्ता नगर में भारत की राजधानी थी उसी तरह सूबा हिन्दुस्तान के दिल्ली नगर में राज-धानी रह सकती है। सच तो यह है कि दिल्ली जिले का अलग प्रान्त रखना भी उचित नहीं है।

अपने वर्तमान प्रान्त के टुकड़े करने का प्रस्ताव तो किसी रूप में भी नहीं सोचा जा सकता। हिन्दी-भाषा-भाषियों के जीवित

रहने के लिये कम से कम ४½ करोड़ लोगों का तो एक प्रान्त के रूप में रहना नितान्त आवश्यक है ।

वास्तव में प्रश्न यह है कि हमारे जो देशवासी पड़ोस के प्रान्तों में बिखरे पड़े हैं वे मुख्य प्रान्त में आकर एक जगह एकत्रित हो सकें। ऐसे मुख्य मुख्य भाग निम्नलिखित हैं :—

(क) पश्चिम में दिल्ली कमिश्नरी—अर्थात् दिल्ली, अम्बाला रोहतक, कर्नाल, हांसी, हिसार—हिन्दी-भाषा-भाषी प्रदेश है। यह पंजाब से अलग करके अपने प्रान्त में आ जाना चाहिये।

(ख) दक्षिण में मध्यभारत की ग्वालियर, पन्ना, रींवा आदि हिन्दी-भाषा-भाषी रियासतों का सम्बन्ध रामपुर, बनारस आदि की तरह अपने प्रान्त से होना चाहिये ।

(ग) हिन्दुस्तानी मध्यप्रान्त के १४ ज़िलों का भी शेष हिन्दी-भाषा-भाषियों के साथ मिल जाना दोनों के लिये हितकर होगा। मध्यप्रान्त के नेताओं की इसमें अवश्य थोड़ी सी क्षति है किन्तु हिन्दी राष्ट्र के स्थायीहित के लिये उन्हें अपने क्षणिक लाभ को त्याग देना चाहिये।

(घ) पूर्व में बिहार प्रान्त के शाहबाद, चम्पारन तथा सारन के तीन ज़िले भोजपुरी बोलनेवाले हैं। इनका भी संयुक्त प्रान्त में आ जाना उचित प्रतीत होता है क्योंकि भोजपुरी प्रदेश का बड़ा अंश इसी प्रान्त में है।

ऊपर के हिन्दी प्रदेशों में से जितने भी अधिक भाग भावी सूबा हिन्दुस्तान के साथ एक में संगठित हो सकेंगे हिन्दी-भाषा-भाषियों

का बल उतना ही अधिक बढ़ सकेगा। हिन्दीराष्ट्र का मुख्य भाग वर्तमान संयुक्त प्रान्त के रूप में अभी भी सुरक्षित है। यदि इसे बढ़ाया न जा सके तो कम-से-कम इसे छिन्न-भिन्न तो नहीं ही होने देना चाहिये।

हिन्दी उर्दू की समस्या

तीसरा मुख्य प्रश्न भाषा के ऐक्य का है। भारतवर्ष के प्रत्येक राष्ट्र में एक ही सर्वमान्य राष्ट्रीय भाषा है। बंगाल तक में जहां ५० फ़ी सदी बंगाली मुसलमान-धर्मावलम्बी हैं बंगला ही बंगाल-राष्ट्र की भाषा है। किन्तु हमारी कठिनाइयों को बढ़ाने के लिये हिन्दीराष्ट्र में हिन्दी और उर्दू के रूप में दो प्रान्तिक भाषाओं के होने को जटिल समस्या भी उपस्थित है। हमारे यहां की हिन्दी उर्दू तथा हिन्दू मुसलमान की समस्यायें का वैसा निकट का सम्बन्ध नहीं है जैसा प्रायः लोग समझते हैं। संयुक्तप्रान्त में केवल १४ फ़ी सदी मुसलमान धर्म्मावलम्बी हिन्दुस्तानी हैं। उर्दू केवल इन हिन्दुस्तानी मुसलमानों की ही भाषा नहीं है। इसके पोषक तो हिन्दुस्तानी काश्मीरी, कायस्थ, खत्री, वैश्य, ब्राह्मण आदि हिन्दू भी रहे हैं और हैं। अपने प्रान्त की रोहिलखंड, मेरठ, और आगरे की पश्चिमी कमिश्नरियों तथा दिल्ली कमिश्नरी में हिन्दुओं के घरों में अब भी उर्दूभाषा और फ़ारसी लिपि का ख़ूब प्रचार है। इसका मुख्य कारण दिल्ली आगरे के मुसलमानी केन्द्रों का प्रभाव है। इन भागों में अब भी सरकारी कारबार में उर्दू का ही व्यवहार होता है।

भारत के भिन्न भिन्न राष्ट्रों में पढ़े लिखे लोगों के बीच हिन्दी जानने वालों की संख्या बढ़ जावे जिस से भविष्य में भारत की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का स्थान अँगरेजी के स्थान पर अपनी भाषाओं में से कोई एक ले सके यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अखिल भारतीय प्रश्न है अतः इसमें कुछ लोगों का लगना ठीक ही है। किन्तु हिन्दी-भाषा-भाषियों के सन्मुख इससे भो अधिक आवश्यक प्रश्न अपने लोगों में उर्दू के स्थान पर हिन्दी के प्रचार करने का है। यह राष्ट्रीय प्रश्न है और हिन्दीराष्ट्र का भविष्य बहुत कुछ इस पर निर्भर है। बिना राज्य की सहायता के हिन्दी और उर्दू के एक हो जाने में मेरा अपना विश्वास नहीं है। राजनीतिक तथा धार्म्मिक नेताओं के अतिरिक्त दोनों भाषाओं के साहित्यज्ञ इस एकीकरण के लिये कभी उद्यत नहीं हो सकते। यदि हिन्दी वाले समझौता करने के लिये किसी तरह उद्यत हो भी गये तो उर्दू-दाँ नहीं होंगे क्योंकि उनमें अच्छी संख्या मुसलमानों की है जिनकी सभ्यता अब उर्दू भाषा और उर्दू साहित्य के द्वारा ही यहां जीवित रह सकती है। देवनागरी और फ़ारसी लिपि के सम्बन्ध में भी मैं किसी समझौते को नहीं सोच सकता। लेकिन साथ ही मैं इसमें विश्वास करता हूं कि हिन्दी को जान-बूझ कर क्लिष्ट नहीं बनाना चाहिये। इसमें अपनी ही हानि है क्योंकि यदि जनता की भाषा से साहित्यिक हिन्दी बहुत दूर हो गई तो जनता इसको छोड़ देगी। लिपि के सम्बन्ध में भी राष्ट्रीय लिपि देवनागरी ही हो सकती है।

व्यवहारिक दृष्टि से कुछ दिनों तक बच्चों को फ़ारसी लिपि भी साथ साथ बाद को सिखलाई जा सकती है।

मेरी समझ में हिन्दी राष्ट्र के हितैषियों को अपनी संपूर्ण शक्ति पश्चिमी 'हिन्दुस्तान' में विशेषतया हिन्दुओं के बीच में हिन्दी और देवनागरी लिपि के प्रचार में लगानी चाहिये। प्रत्येक हिन्दुस्तानी बालक की शिक्षा हिन्दी और देवनागरी लिपि से आरम्भ होनी चाहिये। हिन्दी सीख लेने के बाद वह जितनी अधिक भाषायें चाहे सीख सकता है। यदि एक बार भी अपने राष्ट्र के ८५ फ़ी सदी हिन्दुओं ने हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी को अपना लिया तो फिर हिन्दी-उर्दू की समस्या बहुत कुछ सुलझी हुई समझनी चाहिये। बिना लकड़ी के बेंट के जंगल को काट सकना सरल नहीं रह जायगा।

राष्ट्रीय भाव को जगाना

चौथा और अन्तिम मुख्य प्रश्न राष्ट्रीयता के भाव को जाग्रत करने का है। राष्ट्र का ठीक नाम हो जाने, हिन्दी-भाषा-भाषियों के एक जगह एकत्रित हो जाने, तथा दो प्रान्तिक भाषाओं की समस्या सुलझ जाने से राष्ट्रीय जीवन बहुत कुछ बल पकड़ सकेगा। किन्तु इतना कर लेना पर्याप्त नहीं है। राष्ट्रीयभाव में अपने लोग सब से अधिक पिछड़े हुए हैं। अतः इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से प्रयत्न करने की आवश्यकता है। अपने यहाँ राष्ट्रीयभाव को प्रान्तीयता का नाम देकर उसे नीच दृष्टि से देखा जाता है। भारतीय और राष्ट्रीय समस्याओं के भेद को समझने

का यत्न ही नहीं किया जाता। हमारे राष्ट्र में अखिल भारतीय नेताओं की कमी नहीं है किन्तु सच्चे राष्ट्रीय—प्रान्तीय—नेता ढूंढे नहीं मिलते। अतः सब से पहली आवश्यकता इस बात की है कि अपने देश के बड़े लोगों में से कुछ अपने को हिन्दीराष्ट्र की उन्नति में ही खपा दें। उन्हें यह नहीं भुलाना चाहिये कि हिन्दी-भाषा-भाषियों के द्वारा ही वे भारतवर्ष की सच्ची सेवा कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त भविष्य के हिन्दी साहित्य का निर्माण राष्ट्रीय आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर होना चाहिये। आजकल इस ओर बिलकुल भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है। उदाहरण के लिये बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि के कई इतिहास लिखे गये हैं जिन्हें उन राष्ट्रों के प्रथम श्रेणी के विद्वानों ने राष्ट्रीय दृष्टि से लिखा है। हिन्दी में हिन्दीराष्ट्र के विशाल इतिहास की अभी कल्पना भी नहीं हो पायी है। जब हिन्दुस्तानी विद्वान ही भारत के इतिहास और हिन्दी-राष्ट्र के इतिहास में भेद नहीं कर पाते तो भारत के अन्य राष्ट्रों के अथवा विदेशों के विद्वानों से क्या आशा की जा सकती है! जैसे प्रान्त का भूगोल पढ़ा जाता है वैसे ही प्रान्त का इतिहास भी तो हो सकता है। यह बात भी नहीं भुलानी चाहिये कि हिन्दी साहित्य के भिन्न भिन्न अंगों का जैसा सीधा सम्बन्ध हिन्दी-भाषा-भाषियों से है वैसा भारत के अन्य राष्ट्रों से नहीं हो सकता। 'भारत भारती' पंजाब, बंगाल, उड़ीसा, गुजरात, आन्ध्र तथा तामिल देशों में नहीं पढ़ी जाती है तब फिर "भारत-भारती" "हिन्द-भारती"

क्यों न हो ? हमारे साहित्य से हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति सब से प्रथम होनी चाहिये।

राष्ट्रीयता के भाव को जाग्रत करने में पत्र तथा पत्रिकाओं से बहुत बड़ी सहायता मिल सकती है। यह सच है कि कुछ अखिल भारतीय प्रश्न हैं किन्तु साथ ही जीवन के प्रत्येक अंग से सम्बन्ध रखने वाली सैकड़ों राष्ट्रीय समस्यायें भी हैं जिनके साथ हिन्दी-भाषा-भाषियों का हित अनहित सम्बद्ध है। हमारी पत्र पत्रिकाओं का उद्देश्य हमारी जनता का ध्यान इन राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने की ओर विशेष होना चाहिये। यह बात अन्य प्रान्त की पत्र पत्रिकाओं का अध्ययन करने से आसानी से समझ में आ सकती है। प्रान्त की प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा की क्या आवश्यकतायें हैं ? हमारे विश्वविद्यालय किस नीति से चलाये जा रहे हैं ? हमारे यहां के किसान और ज़िमींदारों का सम्बन्ध किस तरह मधुर बनाया जा सकता है ? हमारे राष्ट्र के उद्योग-धन्धे कौन कौन हैं और उनमें किस तरह सुधार हो सकता है ? हमारे यहाँ के तीर्थ स्थानों और मन्दिरों में किन परिवर्तनों की आवश्यकता है ? हिन्दुस्तानी स्त्रियों की दशा सुधारने के लिये क्या प्रयत्न होना चाहिये ? इस तरह के अगणित राष्ट्रीय प्रश्न हैं जिनका बंगाली, गुजराती तथा उड़िया लोगों से किसी प्रकार का भी विशेष सम्बन्ध नहीं है। इन्हें तो हमी लोगों को सुलझाना है। संपादकों का कर्तव्य है कि हिन्दी पत्र पत्रिकाओं के द्वारा इन विषयों की ओर अपने राष्ट्र का ध्यान आकर्षित करें।

राष्ट्रीय भाव को स्थायी बनाने की कुंजी

ऊपर के उपायों के द्वारा राष्ट्रीय भाव जाग्रत हो सकेगा किन्तु उस भाव को स्थायी बनाने के लिये यह आवश्यक होगा कि देशवासी राष्ट्रीय हित के आगे जाति-पांति तथा धर्म इत्यादि को गौण स्थान देना सीखें। वर्तमान सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था अथवा अव्यवस्था के रहते हुये राष्ट्रीय भाव जड़ नहीं पकड़ सकता। अपने देश में धर्म्म और समाज के रूप में सदा परिवर्तन होता रहा है और अब एक बार फिर परिवर्तन करना अनिवार्य हो गया है। राष्ट्रीय नेताओं का कर्तव्य है कि उन सामाजिक और धार्म्मिक बुराइयों को दूर करने का पूर्ण उद्योग करें जिनके कारण राष्ट्र शक्तिहीन हो गया है और सैकड़ों वर्षों से ग़ुलामी करते हुए भी अपमान का अनुभव नहीं करता है। जाति-पांति के भेद-भाव और घृणा तथा, धार्म्मिक अन्धविश्वास और अनुदारता को छोड़ना ही पड़ेगा।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दी-भाषा-भाषियों के उद्धार का उपाय हिन्दीराष्ट्र को दृढ़ तथा स्थायी बनाने में है। इसी में भारत तथा मनुष्य मात्र का हित भी सन्निहित है। भारत के प्रत्येक राष्ट्र के उन्नत तथा दृढ़ होने पर ही राष्ट्रसंघ भारतवर्ष के स्थायी पुनरुत्थान की संभावना हो सकती है। भारत माता के प्रत्येक पुत्र को बलिष्ठ, स्वावलंबी और सुखी होना चाहिये। निर्बल, पराधीन और दरिद्र पुत्र एक दूसरे की क्या सहायता करेंगे और क्या उनके द्वारा माता को सेवा हो सकेगी?